राजकुमार सैनी

समर्पण



समर्पण

अमर पब्लिशिंग हाऊस
बी-7/74, एक्सटेंशन सफदरजंग एन्क्लेव,
नई दिल्ली-110029

राजकुमार सैनी

समर्पण



प्रथम संस्करण : 1989

आवरण-सज्जा : हरिप्रकाश त्यागी

मूल्य : बीस रुपये

मुद्रक :
कुमार ऑफसेट प्रिंटिंग प्रेस,
विश्वास नगर—दिल्ली-110032

पूजनीय नाना,

सरदार तूहीसिंह सैनी

और

पूजनीय मां

गुरदेवी

की याद में।

अपनी ओर से इतना कि

कहानी विधा की भी कई उपविधाएं हैं—छोटी कहानी, लम्बी कहानी, संस्मरणात्मक, चरित्र प्रधान, स्थिति प्रधान, मन:स्थिति प्रधान आदि । 'माता गुरप्यारी' लम्बी कहानी है तो 'रोज की लड़ाई' छोटी कहानी है । 'पड़ोसन' संस्मरणात्मक है; 'समर्पण' स्थिति-प्रधान; पिस्तो मन:स्थिति प्रधान है क्योंकि वाचक की तत्कालीन मन:स्थिति को रेखांकित करती है । वैसे 'माता गुरप्यारी', 'पिस्तो' और 'पड़ोसन' चरित्र-प्रधान भी हैं । और 'रोज की लड़ाई' स्थिति-प्रधान भी ।

'रोज की लड़ाई' लहर के 'आम आदमी' विषयक अंक में अन्य शीर्षक से छपी थी । कुछ-कुछ लेखनुमा थी । बाद में मैंने इसे कहानी ही रहने दिया। फिर 'रोज की लड़ाई' शीर्षक से जनयुग में छपी । 'पड़ोसन' और 'फ्रिज' कहानियां भी इसी अखबार में छपी । 'शारदा नन्दन' नंदन में छपी थी 'नन्हीं झोंपड़ी' शीर्षक से । शीर्षक उन्होंने खामखाह बदल दिया । अब इस संग्रह में अपने मूल शीर्षक के साथ छप रही है । यह कहानी महाकवि सुमित्रानंदन के बचपन पर आधारित है ।

पत्नी यशवन्ती, अपने तीनों बच्चों—अमिता, बबिता, नवीन और बहन कौशल की ओर से इन सभी कहानियों को प्रोत्साहन मिला । भाई बलवीरसिंह सैनी का प्यार भी इन कहानियों का प्रेरणा-स्रोत है । बालकथाओं के विशेषज्ञ, मनीषी और पत्रकार श्री त्रिलोकीनाथ श्रीवास्तव; कहानीकार, कवि और आलोचक श्री केवल गोस्वामी; कवि, कथाकार और आलोचक श्रीकांतिमोहन तथा कुशल प्रशासक और कहानीकार श्री रतनचंद जैन ने पिछलों दिनों अपने स्नेह का सघन साया दिया; इन दिनों जिंदगी की धूप लग गई थी; मुझे घने साए की जरूरत थी। इसलिए इनका हृदय से आभारी हूं ।

- **राजकुमार सैनी**

अपनी ओर से इतना कि

कहानी विधा की भी कई उपविधाएं हैं—छोटी कहानी, लम्बी कहानी, संस्मरणात्मक, चरित्र प्रधान, स्थिति प्रधान, मनःस्थिति प्रधान आदि। 'माता गुरप्यारी' लम्बी कहानी है तो 'रोज की लड़ाई' छोटी कहानी है। 'पड़ोसन' संस्मरणात्मक है; 'समर्पण' स्थिति-प्रधान; पिस्तो मनःस्थिति प्रधान है क्योंकि वाचक की तत्कालीन मनःस्थिति को रेखांकित करती है। वैसे 'माता गुरप्यारी', 'पिस्तो' और 'पड़ोसन' चरित्र-प्रधान भी हैं। और 'रोज की लड़ाई' स्थिति-प्रधान भी।

'रोज की लड़ाई' लहर के 'आम आदमी' विषयक अंक में अन्य शीर्षक से छपी थी। कुछ-कुछ लेखनुमा थी। बाद में मैंने इसे कहानी ही रहने दिया। फिर 'रोज की लड़ाई' शीर्षक से जनयुग में छपी। 'पड़ोसन' और 'फ्रिज' कहानियां भी इसी अखबार में छपी। 'शारदा नन्दन' नंदन में छपी थी 'नन्हीं झोंपड़ी' शीर्षक से। शीर्षक उन्होंने खामखाह बदल दिया। अब इस संग्रह में अपने मूल शीर्षक के साथ छप रही है। यह कहानी महाकवि सुमित्रानंदन के बचपन पर आधारित है।

पत्नी यशवन्ती, अपने तीनों बच्चों—अमिता, बबिता, नवीन और बहन कौशल की ओर से इन सभी कहानियों को प्रोत्साहन मिला। भाई बलवीरसिंह सैनी का प्यार भी इन कहानियों का प्रेरणा-स्रोत है। बालकथाओं के विशेषज्ञ, मनीषी और पत्रकार श्री त्रिलोकीनाथ श्रीवास्तव; कहानीकार, कवि और आलोचक श्री केवल गोस्वामी; कवि, कथाकार और आलोचक श्रीकांतिमोहन तथा कुशल प्रशासक और कहानीकार श्री रतनचंद जैन ने पिछलों दिनों अपने स्नेह का सघन साया दिया; इन दिनों जिंदगी की धूप लग गई थी; मुझे घने साए की जरूरत थी। इसलिए इनका हृदय से आभारी हूं।

—राजकुमार सैनी

क्रम

तुषार

तुषार पढ़ रही है। दरवाजे पर दस्तक हुई। झुंझला कर वह उठी। आंचल ठीक किया और दरवाजा खोल दिया। उसका सहपाठी, जिसका नाम वह नहीं जानती, द्वार पर खड़ा था।

"आपने पहचाना···? आपके साथ पढ़ता हूं, मेरा नाम कमल है !" अजीब बेवकूफ है। इस तपती हुई दोपहरी में यह क्या करने आया है ? तुषार के दिमाग में एक कौतूहल-सा जाग उठा। कमल अन्दर आकर बैठ गया। तुषार ने झिड़कते हुए कहा—"लड़कियों के होस्टल में आप कैसे चले आए ?" आपको किसी ने नहीं टोका ? फिर कमरे में यूं घुसना मना है। आप वहां रिसैप्शन हॉल में चलिए, मैं वहीं आती हूं।

पर कमल ने जैसे इस ओर ध्यान नहीं दिया। अपनी ही धुन में डूबा हुआ बोला—"मुझे सख्त प्यास लगी है, एक गिलास पानी" "यहां कोई पानी-वानी नहीं है ! आप वहीं चलिए, वहीं पानी मिलेगा" कमल अब भी नहीं उठा। तुषार के तकिए को मोड़कर उसका सहारा लेता हुआ जैसे बैठने के बाद अब वह पसरने लगा हो। तुषार के क्रोध की सीमा न रही। वह चिल्लाई—"मिस्टर क-म-ल, यू गेट अप !" पर कमल उसके कमरे को और उसे बावला-सा देखता रहा। न हिला, न डुला। तुषार का चेहरा तमतमा रहा था। कमल ने इस पर गौर किया और बोला—"गुस्सा भी आपके मुंह पर खूब फबता है।"

तुषार ने घृणा से दांत पीसते हुए कहा—"तुम किसी कुत्ते के पिल्ले हो !"

कमल एकदम अकड़कर खड़ा हो गया और साधिकार ढंग से फुसफुसाया –"विद ड्रा योवर वर्डस् (अपने शब्द वापस लो !)" तुषार चाहती तो हंगामा हो जाता। लड़कियां, होस्टल अधीक्षक और अन्य कर्मचारी सभी उसकी मदद के लिए आ सकते थे। लेकिन इस दोपहरी में सबके आराम में खलल डालना उसे पसन्द नहीं आया। साथ ही इस प्रसंग को लेकर कोई 'किष्किंधा कांड' हो, यह भी वह न चाहती थी। होस्टल का कमरा बड़ी मुश्किल से मिला है, कोई कांड हो जाने से जाने प्रिंसिपल का रवैया क्या हो। अतः समस्या को सुलझाने की नीयत से उसने बड़ी विनम्रतापूर्वक कमल से अनुरोध किया—"प्लीज कमल, आप बाहर चलिए !"

"आपने 'कुत्ते का पिल्ला' कहा है, इसके लिए आपको माफी मांगनी होगी !" कमल ने शर्त रखी।

"मैं मांफी मांगती हूं" दोनों हाथ जोड़कर पीछा छुड़ाने के अन्दाज में तुषार ने कहा।

"अच्छा, मैं जा रहा हूं।" कहकर, कमल उठा और बाहर हो गया।

दोपहरी और ज्यादा आग बरसाने लगी थी। लू के थपेड़े सहता कमल होस्टल से निकल आया। रास्ते भर उसे कोई भी नजर नहीं आया। जैसे सारा होस्टल सुनसान पड़ा हो।

कमल जिस होस्टल में रहता था, उसका तुषार ने पता लगाया। होस्टल का अधीक्षक तुषार के परिवार में आता-जाता था। तुषार के चचा का वह मित्र था। तुषार ने उससे मुलाकात की और कमल के उस दिन के अवांछित व्यवहार का खुलासा प्रस्तुत कर दिया। होस्टल-अधीक्षक ने आश्चर्य और चिन्ता व्यक्त करते कहा —"लड़का तो वह/ऐसा नहीं है, पर किस आदमी के मन में क्या है, यह थाह लेना कठिन है, वह कॉलेज की छात्र यूनियन का प्रेसीडेन्ट है और यूनीवर्सिटी की स्टूडेन्ट यूनियन की कार्यकारिणी का भी सदस्य है। हो सकता है, इसी अकड़ में उसने यह दुःसाहस भरा कदम उठाया हो। वैसे पढ़ाई में भी वह काफी अच्छा है, देखने में भी सदाचारी ही नजर आता है।"

"आपकी बातें सही हैं, लेकिन मैं भी झूठ नहीं कह रही !"

"उसने मिसबिहेव तो नहीं किया ?"

"नहीं, बिल्कुल नहीं···लेकिन इस तरह दोपहरी में आना और कमरे में घुस कर बैठ जाना···"

"हां हां, सो तो मैं समझता हूं···अच्छा, आप बैठो, सिर्फ दस मिनट इन्तजार करो, मैं उसे बुलाता हूं···"

कोई पन्द्रह मिनट बाद वह हाजिर हो गया। अधीक्षक बोला—"ये तुम्हारी शिकायत करने आई हैं···क्या ये ठीक कह रही हैं ?"

"जी हां, अगर सच बोल रही हैं तो ठीक ही कह रही होंगी ?" कमल ने उत्तर दिया।

"तो फिर आपके खिलाफ कार्रवाई की जाएगी ! आपकी क्या सलाह है ?" अधीक्षक ने इस बार डांट पिलाई।

"इस विषय में मेरी सलाह की जरूरत है ?" कमल ने और भी उद्धत होकर पूछा।

"नहीं !!" कहते हुए अधीक्षक गुस्से से बाहर चले गए।

कमल वही खड़ा रहा। तुषार भी अधीक्षक के पीछे-पीछे चल दी।

इस घटना को हुए चार महीने गुजर गए। फिर एक दिन रात के आठ बजे कमल ने होस्टल में प्रवेश किया और तुषार का द्वार खटखटाया। तुषार ने द्वार खोला। कमल को देखते ही सहम गई।

"घबराइए नहीं, मेरी सगाई का निमंत्रण है। गांव में प्रीतिभोज होगा। जरूर आइएगा, पिकनिक का मजा रहेगा !"

"धन्यवाद !" कहते हुए तुषार ने कार्ड ले लिया। कमल लौट चला। तुषार उसे जाते देखती रही। फिर उसने द्वार बन्द किया।

एक सप्ताह बाद-वही समय।

द्वार पर खट्-खट्।

"कौन है ?" कहते हुए तुषार ने द्वार खोल दिया। कमल सामने खड़ा था। उसने झटके से द्वार बन्द कर लेना चाहा। कमल की चीख निकल गई। दरवाजे में उसकी अंगुली आ गई थी। घबराकर तुषार ने द्वार खोला तो देखा कि उसकी अंगुली से खून टपक रहा है। वह कह रहा

था—"मेरी सगाई टूट गई, लड़की ने पसन्द नहीं किया।"

"यही कहने आप आए हैं ?"

"इसीलिए, कि यह निमंत्रण फिलहाल रद्द समझें, जिस-जिस को निमंत्रण कार्ड दिया, उस-उस को कार्यक्रम के कैन्सल हो जाने की सूचना तो देनी ही थी !"

उस दिन होस्टल से निकलते हुए लड़कियों ने उसे पकड़ लिया। मुंह काला कर उसे गधे पर बैठा कर होस्टल में घुमाया गया। रात के दस बजे तक यह तमाशा होता रहा। तुषार ने भी वह तमाशा देखा और उस का मजा लिया।

कमल की बदनामी पूरे विश्वविद्यालय में चर्चा का मसाला बनी। उसे कॉलेज की यूनियन की प्रेसिडेन्टशिप से हटना पड़ा। विश्वविद्यालय की स्टूडेन्ट्स यूनियन की कार्यकारिणी से भी उसे बर्खास्त कर दिया गया। इस अपमान से दुःखी होकर वह होस्टल छोड़कर गांव चला गया। कॉलेज जाना भी बन्द हो गया। एम. ए. की परीक्षा में वह नहीं बैठा और उसने पढ़ाई छोड़ दी।

तुषार उसकी सहपाठिन थी। उसने फर्स्ट डिवीजन के साथ एम. ए. (हिन्दी) किया और संयोग से अपने ही कॉलेज में लेक्चरार हो गई। उस की खुशी का कोई ठिकाना न था।

कमल उसे बधाई देने उसके घर गया। तुषार के पिता ने द्वार खोला। तुषार पुकारे जाने पर आई। उसने कमल को देखा। एक क्षण के लिए उसका चेहरा कठोर हो गया, लेकिन कमल की आंखों से आंखें मिलते ही उसका चेहरा मुलायम होता नजर आया। कमल ने कहा—"मैं आपको बधाई देने आया हूं।"

"धन्यवाद !"

इस बीच पिता भीतर चले गए।

"मुंह मीठा नहीं कराओगी।"

"अन्दर आइए !"

अन्दर आकर कमल एक कुर्सी पर बैठ गया। थोड़ी ही देर में तुषार एक प्लेट में मिठाई ले आई। प्लेट में काले रंग के गुलाबजामुन और

बर्फियां थी। दूसरी प्लेट में कुछ नमकीन भी। कमल ने पहले पानी पिया फिर मिष्ठान ग्रहण किया इसके बाद चाय।

इसी बीच तुषार का ध्यान उसके चेहरे पर गया। चेहरा काफी बुझा-बुझा, हल्की दाढ़ी, बाल अस्त-व्यस्त। उसकी आवाज में भी पहले जैसी मस्ती नहीं थी। वह एक पस्त, पिटा-पिटा और थका-हारा मुसाफिर-सा लग रहा है। दोनों में कोई बातचीत नहीं हुई। उसके बाद कमल नमस्कार कर चल दिया। तुषार ने भी हाथ जोड़ दिए। मुंह से कुछ न कहा। वह द्वार तक साथ आई और उसे जाते हुए देखती रही।

तुषार का घर कॉलेज से तेरह मील दूर था। रोज आने-जाने की परेशानी से तंग आकर यूनिवर्सिटी-महिला-होस्टल में ही रहने लगी। एक दिन वह बाहर गेट के पास टहल रही थी। उसने देखा फर्लांग भर के सामने पर कोई चहलकदमी कर रहा है। चाल कुछ पहचानी-सी लगी। अगले दिन भी उसका ध्यान उधर गया तो वही दृश्य। एक हफ्ते तक वह इस घटना का नोटिस लेती रही। आज वह फिर लगभग उसी समय बाहर टहलने निकली। वही आदमी फर्लांग भर के फासले पर टहल रहा था। सांझ बीत चुकी थी और रात घिरने लगी लगी थी। सड़क पर चलने वाली कारों, मोटरों ने रोशनी फेंकना शुरू कर दिया था। तुषार साहस कर आगे बढ़ आई, हो न हो यह कमल ही है। यह बेचारा रोज इधर आता है, सिर्फ मुझे देखने। मेरी ही वजह से इसका सर्वनाश हो गया। वरना पढ़ाई में कितना अच्छा था, वह भी आज लेक्चरार होता। पास के देहात में रहता है। गरीब किसान का बेटा है। एम. ए. किया नहीं। अब इसे नौकरी कहां मिलेगी। बेकार। सुना था दुबारा एम. ए. में दाखिला ले लिया है। सोचते-चलते वह काफी नजदीक आ गई। उसका अन्दाज गलत था। यह कमल नहीं था, कोई और ही था।

तुषार बस में बैठी है। अगले स्टाप पर बस रुकी। कोई आदमी उसकी बगल में आकर बैठ गया है। वह अपने ख्यालों में डूबी हुई है। आदमी सट कर बैठा है। वह सिकुड़कर जरा हट गई है, लेकिन उसके विचारों का सिलसिला अभी टूटा नहीं है।

कन्डक्टर ने कमल से टिकट के लिए पूछा। कमल ने तुषार की ओर

संकेत कर दिया। कन्डक्टर ने तुषार का कन्धा छू दिया—"श्रीमती जी, इनका टिकिट लीजिए !"

तुषार को गुस्सा आ गया। एक तो विचारों का सिलसिला टूट गया। दूसरे वह क्यों किसी का टिकट ले, चाहे वह कोई भी क्यों न हो। और सहसा उसने कनखियों से देखा और पहचाना। बिगड़े हुए भेष में कमल ही तो है।

अजीब आदमी है, क्या भेष बना रखा है। बिखरे, धूल में सने बाल, दाढ़ी बढ़ी हुई, बिना प्रेस किए कपड़ों में कैसा बेतुका लग रहा है, इसे दूसरे की इज्जत का बिल्कुल ख्याल नहीं। फिर बस में बैठा है, तो टिकट क्यों नहीं लेता ?

"इनके टिकट के लिए मुझसे क्यों पूछते हो ?" तुषार ने कन्डक्टर को डांटते हुए कहा।

"मेरे पास पैसे नहीं हैं, टिकट ले लो !" कमल ने उसके कान में फुस-फुसाकर कहा।

"अजीब बात है, पैसे नहीं हैं तो बस में क्यों चढ़े ?" तुषार ने रोष-पूर्वक अन्दाज में धीरे से प्रयुत्तर दिया।

एक आदमी ने मजाक किया - "मियां-बीबी का झगड़ा है।" दूसरे ने कहा—"पुराना माशूक लगता है।" तीसरे ने शरीफ आदमी का अन्दाज ओढ़ते हुए सारी बस को सुनाया, "हर किसी को बिना जाने-पहचाने कुछ भी समझ लेना कोई अच्छी बात है। क्या पता है, भाई-बहन ही हों।" इस पर चौथे आदमी ने आंख मिचकाते हुए कहा—"दोनों के कपड़े मैचिंग नहीं हैं।" पांचवां बोला—"लेकिन पुरानी जान-पहचान जरूर है।" ये कही पते की बात ! छठा भी चुप कैसे रहता।

तुषार ये सब सुन रही थी। खून का घूंट पीकर रह गई। उसे कमल पर ही गुस्सा आया। उसने टिकट के पैसे नहीं दिए और चुपचाप बैठी रही। कन्डेक्टर ने कमल को बस से नीचे उतर जाने के लिए कहा। उसने उतरने की बजाए तुषार से उम्मीद की कि वह पैसे दे दे।

कन्डेक्टर ने बस रुकवा दी। जब तक ये हजरत टिकट नहीं लेंगे वह बस को रोके रखेगा। तुषार घबराई। उसने उससे प्रार्थना की, कि वह

बात न बढ़ाए और टिकट दे दे। एक रुपए का नोट कन्डक्टर की ओर बढ़ा दिया।

लेकिन अब कन्डक्टर अकड़ गया था। घर से सोचकर क्यों नहीं चलते? मजाक बना रखा है। अब तो थाने में ही टिकट मिलेगा। लोगों को अपने-अपने ठिकानों पर पहुंचने की जल्दी होती है। वे इस शगल का शगल की ही तरह मजा लेना चाहते थे। बस को थाने ले जाने में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं थी। उन्होंने कन्डक्टर पर समवेत स्वर में दबाव डाला। बस फिर से सही रूट पर चलने लगी। ड्राइवर क्यों पीछे रहता, उसने भी फबती कसी—"घर से लड़कर निकले हो, बस में तो प्यार से बैठो।" बस में सब लोग हंस पड़े। तुषार की आंखों में आंसू आ गए। उसे जाना आगे था, लेकिन बस में बैठे रहना मुश्किल हो रहा था। वह अगले ही स्टाप पर राजघाट के किनारे उतर गई। कमल भी पीछे-पीछे उतर गया। बस में एक बार फिर ठहाका मचा, फबतियां कसी गईं और सीटियां गूंज गईं।

बस आगे बढ़ गई। तुषार की सांस में सांस आई। मन का गुबार हलका करने के लिए राजघाट के किनारे एक टीले पर पेड़ के नीचे घास पर धम्म से बैठ गई। कमल भी नजदीक आकर खड़ा हो गया। उसकी सूरत और सीरत देखकर और नजदीक आकर बैठने की उसकी हिम्मत न हुई।

तुषार ने क्रोध, आक्रोश और झुंझलाहट से रुआंसी होकर कहा—"चले जाओ, क्यों मेरे पीछे पड़े हो !!" इस गुस्से भरी दुत्कार में भी कहीं न कहीं आत्मीयता की गंध थी। उस गंध को सूंघते हुए कमल बिल्कुल नजदीक आकर बैठ गया। कमल ने तुषार के बाएं हाथ की एक अंगुली से सोने की अंगूठी निकालकर अपने हाथ की एक अंगुली में डाल ली। क्रुध-सी तुषार उसकी इस हरकत को देखती रही।

तुषार को दुबारा बस पकड़नी थी। उसे बस में चढ़ाकर कमल अकेला राजघाट पर घूमता रहा। हरे-भरे मैदान, नीला आकाश, सफेद-सफेद बादल, और बहती हुई यमुना नदी का पानी। वह काफी देर इधर-उधर घूमता और अपने ठिकाने की ओर चल दिया।

चार महीने बाद—

तुषार के कॉलेज में कुमुद नाम की लड़की पढ़ती है। तुषार बी. ए.

कक्षाओं को हिन्दी पढ़ाती है। ऑनर्स की भी छात्राओं को वह आधुनिक कविता पढ़ाती है। कुमुद ऑनर्स में पढ़ती है। एक दिन निराला की 'राम की शक्तिपूजा' पढ़ाते-पढ़ाते उसका ध्यान कुमुद के हाथ की एक अंगुली पर चला गया। अंगूठी थी, वही, हां बिल्कुल वही जो कमल को उसने दी थी। दी थी क्या लगभग कमल ने ही छीन ली थी। यह क्या ? अनायास, उसे सब कुछ डोलता हुआ लगा। उसे लगा जैसे चक्कर आ गया है। धम्म से कुर्सी पर बैठ गई—

"देखते हुए निष्पलक याद आया उपवन,
विदेह का—प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन,
नयनों का —नयनों से गोपन-प्रिय सम्भाषण,
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन,

आंखें भर आईं। पलकें भारी हो उठीं। "बस आज यहीं तक।" कहते हुए उसने किताब बन्द कर दी। अपरा के कवर पर वह सरस्वती का चित्र निहारती रही। कमल का पुष्प, सागर और वीणा, और भर्तृहरि के वैराग्य शतक का वह श्लोक भी उसे याद आ गया ! धिक् ताम् च तम् च···!

आंखों से "मुक्तादल से" बड़े-बड़े अश्रु ढुलक पड़े। कक्षा की सभी छात्राओं ने यह दृश्य देखा और कानाफूसी के साथ क्लास बर्खास्त हुई। तुषार ने कुमुद को अलग से बुलाया। अपने को रोक न सकी, पूछ ही लिया—

"यह अंगूठी देखूं ?"

कुमुद ने उतार कर दिखा दी।

"बनवाई है ?"

"जी नहीं !"

"खरीदी है ?"

"नहीं ! मेरे एक परिचित ने दी है।"

"कौन है वह ?"

"जी एक हैं, मेरे भय्या के मित्र !"

"क्या नाम है उनका ?"

"श्री कमल !"

तुषार ने चुपचाप कुमुद को अंगूठी लौटा दी, और उठ कर चल दी। कुमुद को जैसे कुछ-कुछ समझ में आया। उसे मालूम था कि कमल तुषार का सहपाठी रह चुका है।

तुषार ने कमल के गांव के लिए बस पकड़ी। बस में ज्यादातर देहात के लोग थे और बहुत ज्यादा भीड़ थी। उसके शहरी लिवास को देख कर किसी ने भी लेडी-सीट खाली नहीं की। पच्चीस मिनट का सफर। देहाती लोगों के कपड़ों से अजब-सी गन्ध। गांव की सड़क के किनारे-किनारे कीकर के वृक्ष, जोहड़, नहर के ऊपर से गुजरती हुई बस, खेत, पनघट हलों में जुते हुए बैल, मिट्टी की मौलिक महक; एक अजब आलम था। उसे याद आया कमल ने उसे सगाई पर बुलाया था।

पिकनिक सी हो जाएगी···।

वह उतरी। एक कच्ची सड़क कोई आधा मील भर। वही गांव की ओर जाती है। दो युवक साथ हो लिए। पीछे-पीछे बच्चों को गोद में लिए दो औरतें भी आ रही थीं। उनके साथ एक बारह बरस का लड़का भी चला आ रहा था। तुषार रुक गई। पीछे मुड़ कर देखा। उसी लड़के से पूछा—"गांव दूर है क्या ?"

लड़का मुंह ताकने लगा। अवाक। उससे उत्तर देते न बना। दोनों युवक भी रुक गये। एक ने अपनी धोती के एक सिरे से पसीना पोंछते हुए कहा—"आध कोस पर गाम है। थमने कहां जांणा है किस के जाणा है।'

"मुझे श्री कमल के यहां जाना है। हम और वो साथ-साथ पढ़े सैं।"

"ठीक है, म्हारे साथ-साथ आओ, हम उसनै जाणै सैं।"

तुषार सोचने लगी, क्या कमल भी घर में ऐसे ही बोलता होगा ? कालेज में तो वह साफ शुद्ध शहरी हिन्दी है बोलता !

"एक आदमी ने तुषार को इशारे से बताया—गांव शुरू होते ही उसका वो मकान है !" इस बार वह अटक-अटक कर अपने लहजे में बोला था लेकिन साफ हिन्दी बोलता था।

तुषार मुस्करा उठी। और उसने उस युवक की ओर देखा। गांव शुरू हो गया। प्रवेश करते ही बच्चों ने उसे घेर लिया। एक बोला—'घणी सुथरी सै।'

दूसरा—'दाऊं चिट्टी सैं' यह लड़का रोहतक से यहां आया हुआ था, अपनी नानी के यहां।

युवक ने उन्हें धमकाया। कमल का घर आ गया था। द्वार पर उसे कमल की मां मिली। शक्ल बिल्कुल कमल से मिलती थी। तुषार ने पांव छू दिए। मां ने आशीर्वाद में सिर पर हाथ फेरा। अन्दर लाकर बैठाया। छत पर एक कमरा था उसी में एक टेबल-फैन था। वह ऊपर गई और टेबल-फैन लाई। तुषार की ओर करके पंखा चलाया। तुषार का पसीना सूखने लगा। इस समय हवा उसे बहुत अच्छी लगी। मां पांच मिनट बाद मलाई से ढका दूध का गिलास ले आई। तुषार ने बड़े चाव से पिया।

मजे की बात यह थी कि बिना परिचय के ही दोनों एक दूसरे को जान गई थी। मां ने पूछा—"घर पर सब राजी हैं!"

"जी हां सब कुशल है?"

"कमल कई बार तुम्हारा जिकर करता है!"

तुषार को अच्छा लगा लेकिन लज्जा के कारण उसका गोरा मुख लाल हो उठा। कमल की छोटी बहन अकारण ही शर्माती जा रही थी। वह तुषार के पास एक ओर सिकुड़ी बैठी थी और बार-बार तुषार को देख भी रही थी।

इसी बीच कमल आ गया। तुषार को देख कर वो खुश भी हुआ और हैरान भी। अकेली गांव तक वह कैसे चली आई। उसने हांथ जोड़कर नमस्ते की। फिर पूछा—

"आने में तकलीफ हुई होगी!"

"हां थोड़ी-बहुत, लेकिन अच्छा लगा।"

मां भी मुस्कराई, कमल भी।

कमल की मां ने डट कर तुषार की खातिर की। चीनी मिला कर मक्खन खिलाया। खीर, हलुआ, आलु का साग, आम का अचार और देसी घी के परांठे। तुषार मना करती रही पर वह जबरदस्ती 'थोड़ा और, थोड़ा और' करती खिलाती ही जाती थी।

तुषार को खूब खाने की आदत थी, पर यहां तो हद ही हो गई थी। उसने रुआंसी होकर कहा—"बस कर मां! मेरे पेट में दर्द हो जाएगा।"

कमल की मां ने बस की।

कुछ देर तुषार अधलेटी-सी आराम करती रही। घर में बच्चे बार-बार आते-जाते थे। मुहल्ले भर के बाल-गोपाल के लिए एक तमाशा-सा हो गया था। वे तुषार को देखते जैसे कोई प्रदर्शनी लगी हो। कुछ देर इस तमाशे का स्वयं उसने भी मजा लिया। लेकिन वह एकांत में कमल से अंगूठी के बारे में बातचीत करना चाहती थी। उसने पूछा -- "तुम्हारे पिता कहां हैं ?" "इस समय वो खेत पर हैं, मेरे दो भाई और एक बहन भी वहीं है !" कमल ने उत्तर दिया।

"खेत यहां से कितनी दूर है ?" तुषार ने पूछा।

"एक-डेढ़ मील भर तो होगा ही !"

तुषार ने सोचा, वहीं चला जाए। टहलना भी होगा, बातचीत भी हो जाएगी और वह कमल के परिवार के अन्य सदस्यों से भी मिल लेगी। लेकिन संकोच की मात्रा भी कम नहीं थी। वह गांव में से होकर खेत तक जाएगी। गांव के बच्चे पीछे लग जाएंगे। जलूस-सा निकल जाएगा। लोग भी क्या कहेंगे ! फिर भी उसने कहा—"कमल, मैं तुम्हारे साथ खेत तक चलूं तो कोई हर्ज तो नहीं होगा ?"

"हर्ज कैसा ?"

"गांव के लोग कुछ कहें या सोचें ? फिर बच्चे पीछे-पीछे आएंगे ?"

"अब गांव पहले जैसे नहीं रहे, कुछ लोग वैसे हैं भी, पर मैं उनकी परवाह नहीं करता। मैं साथ रहूंगा तो बच्चों को पीछे आने से रोक दूंगा !"

तुषार का संकोच घटा नहीं। लेकिन कमल ने जिद की और उसे मानना पड़ा। आखिर प्रस्ताव भी तो उसी ने किया था।

रास्ते में चलते हुए तुषार को काफी कठिनाई हुई। वह गांव की कच्ची पगडंडियों पर पहली कभी नहीं चली थी। उसका अब तक सारा जीवन शहर में ही बीता था। फिर भी चलते-चलते वह काफी खुश थी। दो बार गिरते-गिगते बची, एक बार लगभग गिर ही गई तो कमल ने उसे संभाल लिया। एक मील चलने के बाद वह थक गई—बोली "तुम तो कहते थे डेढ़ मील···अभी और चलना है ?"

"अभी एक मील ही चले हैं, वो सामने है, आधा मील और चलना होगा।"

चलते-चलते तुषार उदास हो गई। उसने कहा—"तुम्हारी उंगली में जो अंगूठी थी, वह कहां गई ?"

"कौन सी अंगूठी"

"बहुत बनते हो, यह भी बताना पड़ेगा ?"

"वो···कुमुद ने ले ली"

"कैसे ले ली"

"बस, छीन ली !"

"कैसे छीन ली ? क्यों छीन ली ?"

"जैसे तुमसे मैंने छीनी थी, बिल्कुल वैसे ही उसने मुझसे छीन ली, वो बड़ी शरारती लड़की है, समझ नहीं आता, उसने अंगूठी ही क्यों छीनी शायद वही कारण रहा होगा, जिस कारण मैंने तुमसे छीन ली थी !"

तुषार की नाराजगी गुस्से में बदल रही थी—"तुमने क्यों छीनी थी ?" उसने रोष भरी आवाज में पूछा।

कमल चुप रहा। तुषार ने कहा—"मेरी अंगूठी वापस कर दो, मुझे चाहिए !"

"अंगूठी वह नहीं देगी, कितने की है ? मैं उसके रुपये दे दूंगा"

"बड़े आए रुपए देने वाले; वह दस-हजार से भी ज्यादा की है, उसमें हीरा जड़ा था।" तुषार ने रोकर कहा।

"हीरा ? हीरा तो उसमें मैंने नहीं देखा !" कमल ने भोलेपन और हैरानी के साथ पूछा।

"तुम परले दरजे के नामाकूल हो !" तुषार ने अपनी आंखें पोंछते हुए कहा। उसके बाद उसने कोई बात नहीं की।

खेत की मेढ़ नजदीक आ गई थी। हल चलाते हुए पसीने से तर कमल के पिता दिखाई दिए। उन्हें देखकर तुषार का हृदय ममता और करुणा से भर आया। उन्होंने हल छोड़ दिया और हाथ जोड़कर नमस्कार किया। दोनों भाइयों ने भी प्रणाम किया। एक बहन संकोच के कारण सामने नहीं आई। खेत में एक झोंपड़ी थी। झोंपड़ी के ऊपर एक सघन

पेड़ की छाया थी। थोड़ी ही दूर पर एक कुंआ था। छोटे भय्या ने बालटी उठाई और कुंए की ओर चल दिया। दूसरे भय्या ने झोंपड़ी में से एक चारपाई निकाल कर बिछाई—तुषार को उस पर बैठने को कहा गया। वह बैठ गई। उसे लगा जैसे वह किसी तपोवन-आश्रम में आ गई है। कमल के बूढ़े पिता उसे ऋषि के समान प्रतीत हुए। कुछ पल जैसे वह कल्पना में खोई रही। फिर जैसे उसने आंखें अच्छी तरह खोलकर देखा—झुर्रियोंदार चेहरा, लम्बी किंतु कमजोर देह जो एक तरफ को झुक गई है, धंसी धंसी आंखें लेकिन मुख पर एक सौम्य भाव। आंखों में जैसे एक पीड़ित सी दृष्टि…

हवा में प्राणदायिनी सुगंध थी। पेड़ पर पक्षियों का कलरव एक मन्थर-मन्थर स्वर लहरी में तैरते हुए समूह-गान की तरह सुनाई दे रहा था। झोंपड़ी के तीन तरफ फूलदार पौधे थे। सदावहार, चमेली, गुलाव और मोतिया। तुषार का मन जैसे महकने लगा। उसे यह स्थान इतना पसंद आया कि मन ने कहा—सब कुछ छोड़ कर इस वयोवृद्ध की सेवा में ही क्यों न जीवन गुजार दिया जाए। लेकिद क्या ऐसा संभव होगा? क्यों नहीं होगा? लेकिन…। इन्हीं ख्यालों में डुबकी लेते-लेते झपकी आ गई। सभी ने देखा और उसे विश्राम करने दिया।

यहां भी तुषार को अपना परिचय देने की जरूरत न पड़ी। जैसे इन लोगों से वह चिरपरिचित हो। अपरिचय का वहां नामोनिशान न था।

दो घंटे बाद तुषार की आंख खुली। उसने एक सपना देखा था। सपने में कुमुद और कमल एक साथ बैठे हैं। हंस रहे हैं और वह दूर से उन्हें देख रही है। आखें मलती हुई वह उठ बैठी। शाम के चार बज रहे थे। उसे इसी समय चल देना चाहिए। सबको प्रणाम कर वह चली। कमल उसके साथ बस में चढ़ाने आया। वह रास्ते भर उससे नहीं बोली।

बस आई, वह बिना कुछ कहे बिना कमल की ओर देखे ही बस में चढ़ गई। कमल उसकी पीठ ताकता रहा। बस चली गई। वह देखता रहा तब तक जब तक कि बस नजर से ओझल न हो गई। कमल कुमुद के घर गया। वह एक गरीब किंतु पढ़े लिखे ड्रायवर की बेटी थी। घर पर इस समय कुमुद और उसकी मां थी। मां ने उसे बड़े प्यार से बैठाया। घर की कुशल-क्षेम पूछी। फिर चाय बनाने के लिए रसोईघर में चली गई।

एकांत पा कर कमल ने कहा—"कुमुद अंगूठी दे दो उसकी मुझे जरूरत है।" कुमुद ने अधिकारपूर्वक पूछा—"क्यों ?"

कमल ने दृढ़ता से कहा—"लाओ उतार दो।"

कुमुद ने अंगूठी उतार कर उसे दे दी। कमल बिना चाय पिए चुपचाप चला आया। वह कब लौट गया, कुमुद की मां को पता भी न चला।

कमल तुषार से मिला और उसे अंगूठी सौंप दी। तुषार ने चौंक कर देखा। कमल का चेहरा पत्थर हो उठा था। वह डर सी गई। बोली—"गुस्सा थूक दो और इसे तुम पहनो, मैं इसे केवल तुम्हारे हाथ में देखना चाहती हूं, किसी और के नहीं।" कहते हुए उसने कमल को अंगूठी पहनानी चाही। कमल ने उसका हाथ झटक दिया। अंगूठी नीचे गिर पड़ी। उपेक्षा से मुंह फेर लिया और जाने लगा। तुषार ने उसकी कमीज का सिरा थाम लिया—"कमल, मेरी ओर देखो! इतना गुस्सा ठीक नहीं!!"

लेकिन कमल रुका नहीं, वह चला गया।

काफी देर तक अंगूठी जमीन पर पड़ी रही।

पड़ोसन

उस समय मैं सोलह साल का था। उसकी उमर कोई 32 वर्ष की रही होगी। उसका रंग काफी सांवला था और चाल हथिनी की तरह थी। एक खासी मोटी औरत, गिलनसार, सरल और सहनशील किन्तु बिगड़ने पर बेहद ख़ूंखार। लेकिन अक्सर उसका गुस्सा अपने बच्चों पर ही उतरता।

उसके लड़ने का ढंग याद आते ही आज बीस साल बाद भी मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मुहल्ला सिर पर उठा लेती। अपनी केशराशि फैला लेती। एक-एक आक्षेप का चुन-चुन कर करारा जवाब देती जाती। राह चलते-चलते किसी भी तमाशबीन को अपना सबसे आतुर श्रोता समझ कर पूरे कांड की कथावस्तु, को दोहरा देती। फिर कसमों का अंबार लगा देती। अपने को अक्सर कुछ इस ढंग से कोसती···'अगर मेरा कसूर हो तो मैं रांड हो जाऊं'···'अगर मैंने वह बात कही हो तो मेरा बेड़ा गरक हो'··· 'अगर ऐसा मैंने किया हो तो मैं बांझ हो जाऊं' आदि, आदि वाक्यांशों के साथ वह बड़े-बड़े पेचीदा जुमले पर जुमले बोलती जाती। उसके बाद जो बच्चा सामने आता उस पर गुस्सा उतारती। बारी-बारी अपने सारे बच्चों की मंजाई करती। उसके बाद एक कोने में बैठ कर रोने लग जाती। कुछ देर रोती रहती; इस बीच मुहल्ले की कोई औरत उसे गलती से चुप कराने आ जाए तो उपसंहार की ओर बढ़ती हुई कहानी, फिर से शुरू हो जाती। और इस तरह सर्दियों की दोपहर खत्म हो जाती।

उसके ऐसे स्वभाव से प्रभावित होकर मैंने उसका नाम मन्दोदरी रख दिया था। इसका एक कारण शायद यह भी था कि उसके पति की शकल रावण से मिलती-जुलती थी। मुहल्ले की औरतों में मैं काफी लोकप्रिय था। किसी को दही की जरूरत होती, तो वह पुकार उठती – "राज ! ओ राज !! मुझे दही लाकर दे।" किसी का बच्चा शरारत कर रहा होता वह गुहार लगाती—"राज, इसे पकड़ कर जरा थपड़ा दे !" किसी का घर सूना हो तो वह कह जाती—"मैं जरा बाजार जा रही हूं, घर का ध्यान रखियो !" आदि आदि। एक दिन एक औरत ने कहा—"राज ! सुना है तूने इस मोटी का नाम मन्दोदरी रख दिया है। मन्दोदरी तो बड़ी शरीफ़ औरत थी। तूने इस चंडी का यह नाम क्यों रखा ?"

मैंने समझाने के अन्दाज में उत्तर दिया--"यह दिल की बड़ी साफ है, मुझे तो बहुत अच्छी लगती है !"

"अच्छी लगती है ? तुझे और सब बुरी लगती हैं ? वाह रे ! अच्छा मैं उसको बताऊंगी कि राज तुझे शरीफ औरत समझता है, तू उसे बड़ी अच्छी लगती है, इसीलिए उसने तेरा नाम मन्दोदरी रख दिया है।" मैं सचमुच डर गया। मैंने उस औरत के पांव पकड़ लिए और खुशामद करते हुए कहा कि उसे यह बात न बताना ! औरत ने मुझे उठाकर अपनी बाहों में भर लिया और फिर अनायास छोड़ते हुए कहा—"कैसे कहूंगी रे, और अगर कहा भी तो क्या वो मुझे बख्श देगी ?"

लेकिन बात छिपी न रह सकी। उसे कानोंकान खबर हो गई कि मैंने उसका नामकरण कर दिया है। लेकिन वह मौके की तलाश में रही, उसने सीधे बात नहीं की। लेकिन मैंने देखा कि मेरे प्रति उसका बर्ताव बदल गया था। मैं बात करने की कोशिश करता तो वह बेरुखी से जवाब देती।

और एक दिन उसे वह मौका भी मिल गया।

मेरे सबसे छोटे भैया और उसके एक लड़के का आपस में झगड़ा हो गया। दोनों हमउमर थे। दोनों लड़कों की लड़ाई वह चुपचाप देखती रही। हाथा-पाई होने लगी तो उसने छुड़ाया भी। निष्पक्ष भाव से झगड़ा निबटाने की कोशिश कर रही थी और अपने लड़के को ही उसने ज्यादा डांटा। मैं ऊपर से देख रहा था। अचानक मेरे भैय्या ने उसे प्रत्युतर देते

हुए कह दिया—"चल बे, रावण की औलाद !"

बस फिर क्या था। सहनशीलता उसके चहरे से उड़ती नजर आई। वह साक्षात चंडी होने लगी। मुझे सुना-सुनाकर वह बोलने लगी—"तुम किसकी औलाद हो ? तुम्हारी मां तो सीता है ना ! सीता को रावण ही तो ले गया था ना !! मुझसे बर्दाश्त न हुआ। उन दिनों हम ऊपर के क्वार्टर में रहते थे। वह नीचे के कोने वाले क्वार्टर में रहता था। मैं अपने यहां की बालकनी में खड़ा-खड़ा उससे लड़ने लगा। वह नीचे खड़ी-खड़ी, सिर उठाए हाथों को बार-बार ऊपर की तरफ चमकाते हुए मोर्चा ले रही थी। जब मैं लड़ते-लड़ते थक गया तो हार कर मैंने घृणा से चेहरा सिकोड़ लिया और जोर से कहा—तुझते मैं नहीं लड़ता, तुझसे लड़ेगा, मेरा जूता ···आक थू···" थू की आवाज करते हुए मैंने थूक दिया।

थूक उस पर नहीं गिरा। लेकिन यह अपमान वह सह न सकी। वह आहत होकर रुआंसी होती हुई सीढ़ियां चढ़ गई। मैं समझ गया वह ऊपर आ रही है, अब मेरे घर में आकर मुझसे लड़ेगी। मां गुसलखाने में थी··· कपड़े धो रही थीं और नल बह रहा था। नल से निकलता हुआ पानी भरी हुई बाल्टी में गिर रहा था और मां उसमें कपड़े बार-बार डाल कर, उन्हें निचोड़ती जा रही थी। वह अपने काम में इस तरह मशगुल थी कि उसे स्वप्न में भी यह ख्याल न आया कि उसके दो बेटों की करतूतों के कारण मन्दोदरी नाम की आफत सीढ़ियां चढ़ रही है। मैंने सोचा कि वह अन्दर आकर मां से लड़ेगी। बात बढ़ गई तो मेरी पिटाई भी हो सकती है। अतः मैंने यही ठीक समझा कि झटपट द्वार बन्द कर दिए जाएं। मन्दोदरी ऊपर चढ़ आई थी, जब मैंने द्वार बन्द करने चाहे वह लगभग सामने आ गई थी। अब क्या किया जाए ? मैंने उसे ढकेल कर बाहर कर दिया और एक झटके के साथ द्वार बन्द करने में सफल हो गया।

झटके से द्वार बन्द होते ही, कुछ क्षणों के लिए सन्नाटा छा गया। मैंने सोचा, चलो आफत टली और राहत की सांस ली। लेकिन आफत टली न थी, सीढ़ियों में पसर कर बैठ गई थी।

थोड़ी देर बाद उसका अस्फुट रोदन सुनाई दिया। धीरे-धीरे वह रोदन स्पष्ट और तेज होता गया और फिर इतना तेज कि घर के दरोदीवार में

गूंजने लगा। भाभी और मां दौड़कर आयीं। उन्होंने हैरानगी के साथ द्वार खोले। मन्दोदरी जोर-जोर से रो रही थी, और मां हतप्रभ होकर उसे निहार रही थी। अब मन्दोदरी के स्वर सुनाई दिए—"राज को मैं अपने बेटों से बढ़कर मानती थी, उसकी तारीफ करते मेरी जबान न थकती थी···उसी ने मुझ पर थूका, मुझे दरवाजे से धक्का दिया जैसे मैं कोई कुतिया···मेरी इतनी बेइज्जती की और वो भी राज ने···" और फिर रोने लगी।

मन्दोदरी के ये शब्द सुनकर मेरा दिमाग ठंडा हो गया। वह क्या कह रही है और मैंने उसके साथ कैसे वर्ताव किया। तभी मां कमरे में आई और जोर से मुझे फटकारने लगी—"बेशर्म, औरतों को धक्का देने के लिए ही तू बड़ा हुआ है··कल उसका लड़का मेरे साथ यही व्यवहार करेगा, तो तू डूब नहीं मरेगा? चल उससे माफी मांग!"

मैं आकर उसके सामने खड़ा हो गया। माफीनामे के तौर पर मैंने अपने दोनों हाथ जोड़ दिए। वह बैठी थी। खड़ी हो गई और मुझसे लिपट कर फिर रोने लगी। अपना गुबार और क्षोभ निकालती हुई वह कुछ-कुछ कहती रही। मैं उससे सटा हुआ उसके नेह-पाश में लिपटा उसके आंसू अपने हाथों से पोंछता रहा।

थोड़ी ही देर में वह शांत हो गई। नेहपाश ढीला हो गया। फिर उसने मुझे छोड़ दिया। मेरे सिर पर हाथ रखा और सीढ़ियों से उतरने लगी। मां ने उसे बुलाया। वह ऊपर आ गई। हाथ पकड़ कर मां भीतर ले गई। फिर कहा—"आज ही खोपे वाला गुड़ गांव से आया है। खाकर जाइयो!"

मन्दोदरी बैठ गई। मां ने उसे गुड़ की पटरी खिलाई। उसने दो गिलास पानी पिया और चली गई।

उसके बाद वह उस घटना को भूल गई और पहले जैसी सहज हो गयी।

आज उस घटना को बीस साल हो गए, पर मुझे वह ज्यों की त्यों याद है। मन्दोदरी का वह चेहरा आज भी मेरी आंखों में तैर रहा है,

बिल्कुल वही जैसे मैं बीस साल पीछे लौट गया हूं। वही आवाज—"ओ राज ! देख ले !! ये पप्पू मानता नहीं है···मुझे परेशान कर रहा है··· मैं मारूंगी तो तू फिर कहेगा कि मैं कितनी जुल्मी हूं···मुझे ही कहता है इनको नहीं देखता···ये मुझे कितना तंग करते हैं···!!"

फ्रिज

आजकल मैं एक खास किस्म की हीनभावना से ग्रस्त रहता हूं। जानते हैं क्यों? बात यह है कि मेरे मोहल्ले में एक फ्रिज प्रदर्शनी लगी हुई है। सभी निवासियों के उनमें अपने-अपने स्टाल हैं, सिर्फ मेरा ही स्टाल नदारद है। आप समझ गये होंगे कि मेरी समस्या क्या है!

एक जमाना था, परदा खींचने का रिवाज जोर पकड़ गया था। जी, चेहरों वाला परदा नहीं, घर के दरवाजे वाला परदा। आप जिस घर के दरवाजे के सामने से गुजरे कि एक झटके-सी लंबी आवाज आयी—"कर् र् र् र् च···।" आप किसी घर की खिड़की के सामने से गुजरे ही थे कि फिर यही आवाज आयी—"कर् र् र् र् र् च।" यानी मतलब यह कि दरवाजा हो या खिड़की···, आपके आते ही परदा खिंच जाता था। मानो हर घर नव-विवाहिता दुल्हन बहू हो और आप हों उसके जेठ।

लेकिन देखिए, वह रिवाज बदला भी तो क्या बदला! आजकल लोग अपने दरवाजे अक्सर खुले रखते हैं या उनमें पर्दे लगाते ही नहीं, और अगर लगाते भी हैं तो उसे कभी खींचते नहीं, कोने में एक तरफ बांध कर लटका देते हैं। यानी आप दरवाजे के अंदर झांक सकते हैं। एक बार में नहीं दिखा तो दुबारा, अच्छी तरह घूर कर देख सकते हैं। क्या लोग उदार हो गये हैं? नहीं यह बात नहीं है। दर असल बात यह है कि दरवाजे के अंदर घुसते ही जो बरामदा है, या कमरा है या कुछ भी है, वहां फ्रिज रर ह। जी हां खूब देखिए, घूर-घूर कर देखिए वह आपको दिखाने

के लिए ही रखा है। मैंने कहा न कि मेरे मुहल्ले में फ्रिज-प्रदर्शनी लगी हुई है।

छः-छः फ्लैटों वाला हमारा पड़ोस है। मैं सबसे ऊपर वाले फ्लैट में रहता हूं। आप नीचे से ही मत जाइये, मेरे साथ जरा ऊपर तो चलिए। पहले फ्लोर पर जरा दाएं देखिए। दिखायी दे गया न बिल्कुल फुल साइज···। अब जरा बाएं देखिए उधर भी फुल साइज। इन बाएं वालों को तो नर्वस ब्रेक डाउन होने लगा था।

बात यह है कि इनके यहां दो महीने पहले जो फ्रिज था वह मीडियम साइज का था। जब भी अपना दरवाजा वह खोलते, पड़ोसी का दरवाजा मुह बाए रहता और चाहते हुए भी उन्हें दाएं वाले का 'फुल-साइज' दिख जाता। बस इनको मितली आने लगती। भड़ाक से अपना दरवाजा बंद कर देते और बीवी पर भड़ास निकालते हुए कहते —"यह मिस्टर मेहरा कितना पाजी है, जब देखो, दरवाजा खुला रखता है।"

बीवी शिकायत और आक्रोश के स्वर में मिमियाती—"मुझ पर भरोसा नहीं है?" और बाएं वाला अपना सिर पकड़ लेता और झुंझलाते हुए कहता – "तुम भी बस, कुछ का कुछ समझ लेती हो।"

कोई दस दिन हुए इन्होंने अपना 'मीडियम साइज' फ्रिज बेच दिया है और उसके स्थान पर ये भी 'फुल साइज' ले आये हैं। अब दोनों के दरवाजे खुले रहते हैं और पारस्परिक सद्‌भाव के साथ दोनों घर एक-दूसरे को ताकते रहते हैं।

अब जरा मेरे साथ-साथ सीढ़ियां चढ़ते हुए दूसरे फ्लोर पर आ जाइये। वह देखिए दाएं तरफ हमारे पहुंचते ही परदा खिचा। जानते हैं इनका फ्रिज चोरी हो गया है और बेचारे नया खरीद नहीं पा रहे हैं। मैं जब भी इनके दरवाजे के पास से गुजरता हूं, उसी पुराने रिवाज की स्मृतियां ताजा हो उठती हैं जिसका मैंने शुरू में ही जिक्र किया था। अच्छा छोड़िए इन परदानशीनों को, जरा बाईं ओर देखिए आप सोचेंगे कि ऐसी बेहूदगी के साथ यू सपाट दरवाजा क्यों खोल रखा है, क्या दाएं वालों की तरह यह मुंह छिपाना नहीं चाहते या ये लोग मुंह दिखाने के लिए ज्यादा उतावले हैं! अरे साहब जरा गौर से देखिए, बरामदे में फ्रिज,

किचन में गैस···उस पर प्रेशर कुकर · और उसमें पकता हुआ गोश्त ऐसे में दरवाजा बंद करें इनके दुश्मन। देखिए, सूंघिये और निहाल हो जाइए। और देख रहे हैं आप कैसे छैला-सा खड़ा है मीडियम साइज का फ्रिज।

अब आप देर न कीजिए । मेरी नीयत खराब न हो, इससे पहले ही एक फ्लोर और चढ़ आइए। यह बाईं ओर देखिए मेरा घर है। मेरे पास न बरामदे में रखने के लिए फ्रिज है और न ही पुराने रिवाज वाला परदा। जो कुछ है जैसा है, आपके सामने है।

लेकिन तशरीफ लाने से पहले जरा दायीं ओर घूम जाइए। ये मेरे पड़ोसियों में सबसे ज्यादा फटीचर टाइप हैं। देखने में यह बिल्कुल चिड़ीमार जैसे लगते हैं। अखबार लेने को यह फिजूलखर्ची समझते हैं और अक्सर मुझसे पहले मेरा अखबार पढ़ जाते हैं।

मैं जरा आलसी ठहरा, देर से जो उठता हूं। दरवाजा खोल कर देखता हूं कि अखबार वाला अखबार कहां डाल गया। डाल भी गया है कि नहीं। मैं उसकी तलाश में सीढ़ी-दर-सीढ़ी उतरता जाता हूं तभी पीछे से इनकी आवाज सुनायी पड़ जाती है, निहायत ही कर्कश और वचकानी-शरारत से भरी —"क्या अखबार ढूंढ रहे हैं, यह रहा मेरे पास···।"

और इसके बाद भी बड़े इत्मीनान के साथ मेरे सब्र का इम्तहान लेते हुए पांच मिनट तक मुझे खड़ा रखते हैं। उसके बाद इस अंदाज के साथ वे अखबार पकड़ाते हैं जैसे कोई अहसान कर रहे हैं। दूध वाले के पैसे इन्होंने मार लिए हैं, यह कह कर कि साला पानी मिलाता है। मतलब यह कि बहुत ही हैंड-टू-माउथ आदमी हैं। मैं यह सोच कर अक्सर सब्र कर लेता था कि चलो पड़ोस में एक घर तो ऐसा है जिसमें फ्रिज नहीं है क्योंकि मेरे पास भी फ्रिज नहीं है।

मैं आपको अपने साथ दिल हल्का करने के लिए ले आया हूं। मैं आपकी दिली सहानुभूति चाहता हूं। दरअसल बात ये है कि जब मैं आज सुबह दफ्तर के लिए निकला तो पाया कि यह फटीचर और चिड़ीमार महाशय भी एक मिनी-फ्रिज खरीद लाए हैं।

रोज की लड़ाई

वह आज फिर लड़ कर गया है···दिन बारह घंटे का होता है, लेकिन उसे चौदह घंटे से भी अधिक काम करना होता है। सूरज निकलने से पहले वह काम पर पहुंचने के लिए घर से निकल जाता है और सूरज छिपने के काफी देर बाद घर लौटता है। अक्सर ऐसा होता है कि दोनों वक्त बच्चे उसे सोते हुए मिलते हैं। सोए हुए बच्चों की शक्लें निहारता हुआ वह घर से सुबह निकल जाता है और रात को जब लौटता है तो यही दृश्य उसे देखने को मिलता है। उसके घर से फैक्टरी बहुत दूर है और वहां तक पहुंचने में उसे काफी समय लग जाता है। पिछले कुछ दिनों से अक्सर थका-थका और चिड़चिड़ा नजर आने लगा है। सवेरे घर से निकलते हुए वह पत्नी पर बड़बड़ाता है : "तू रोज देर से उठती है ! मुझे आज फिर देर हो जाएगी !!" पत्नी कसूरवार है और एक कसूरवार का चेहरा लिए खड़ी है। वह नहीं चाहती कि उसका पति नाराज होकर काम पर जाए। पर अक्सर यह होता है कि पत्नी के न चाहते हुए भी, कोई न कोई वजह हो ही जाती है और उसे गुस्सा आ जाता है। कभी कोई चीज समय पर नहीं मिलती, कभी कपड़े धुले नहीं होते, कभी बच्चे रोने लगते हैं, कभी घर में पैसे नहीं होते, कभी बिना कुछ खाए जाना पड़ता है और कभी घर से निकलने में देर हो जाती है। वह इनमें से किसी भी बात पर नाराज हो जाता है। बच्चे सोए हुए हैं और उसकी पत्नी बेबसी के साथ आंखों में एक स्पष्टीकरण लिए जाते हुए पति को देख रही है। आज भी वह लड़कर चला गया

है। कुछ देर तक वह पति को देखती रही और फिर थोड़ी देर बाद उसने किवाड़ बंद कर दिए।

वह भी क्या करे ? एक समय था, लोग हीरे-जवाहरात की खोज किया करते थे, आज बेचारी गृहलक्ष्मी शहर-भर में कोयला ढूंढ़ती फिरती है। शहर में पांच जगहों पर कोयले की टालें है। वह सभी जगहों पर भीख-सी मांग आई, पर कोयला नहीं मिला। तीन घंटे बर्बाद करने के बाद वह मिट्टी लाई। राशन के पैसे आज पति से लेने थे, लेकिन उसका मूड देखकर बात करने की हिम्मत नहीं हुई। दिन में रोज पानी चला जाता है। रात चौका-बर्तन करने के बाद वह देर तक कपड़े धोती रही थी। उसके बाद उसने खाना खाया ही था कि छोटा मुन्ना उठ गया। छोटे मुन्ने को छाती चुसाते-चुसाते रात के बारह बज गए थे। फिर थककर टूटा हुआ बदन उसने चारपाई पर डाल दिया था। थकी-हारी वह लगभग पूरी रात तक जागती रही थी।

कई बार उसकी नींद पूरी नहीं हो पाती और दिन भर आंखों में जलन होती रहती है। सिर कभी इतना भारी हो जाता है कि लगता है फट पड़ेगा। दिन में ढेरों काम करने होते हैं, सुस्ताने का समय नहीं मिलता। रोज रात उसे देर से सोना ही नसीब होता है। कभी मुनिया की कच्छी सीनी है तो कभी मुन्ने का स्वेटर पूरा करना है। कभी इनका सिर और हाथ दबाने होते हैं। सभी बच्चों के लिए एक-एक स्वेटर तो चाहिए और सर्दी बाहर तो थी ही, अब घर के भीतर घुस आई है। आज वह बहुत परेशान और दुःखी नजर आ रही है।

पति का भी क्या कसूर है। वो नाराज न हों तो क्या करें। अब फैक्टरी पहुंचने में देर हुई तो फटकार सुननी पड़ेगी। वो हरामजादा सुपरवाइजर है न, आजकल मालिक की चमचागीरी करने में जुटा है। जरा भी लिहाज नहीं करता। तनिक देर हुई तो आधे दिन की मजदूरी कट जाएगी। पागल कहीं का, जैसे कि वह राशि उसके पेट में चली जाएगी। उसी जग्गो का पोता है न जिसके खसम की हड्डियों में बोद पड़ गया था। ससुरे ने जी तोड़कर फैक्टरी की नमकहलाली करने का ठेका ले रखा था। टी. बी. हो गई थी और उसी में मरा भी। अब ये पोतेराम हैं कि औकात भूल

बैठे। सुपरवाइजरी का नशा है न! सभी मजदूरों और क्लर्कों का दुश्मन बना घूमता है। अक्सर भौंकता रहता है—"ये कारीगर साले बहुत निकम्मे हैं···नमकहरामी तो इनके खून में मिली है।" और आप खुद कुर्सी पर बैठा रहता है।

अब ऐसी हालत में वह भी बेचारा क्या करे? सुपरवाइजर पर तो बस नहीं। अपने बस की बात तो यही है कि उसे मौका न दें। उसे टाइम से फैक्टरी पहुंचना ही चाहिए। वह सोचती है और संकल्प करती है कि कल से सबेरे और अधिक जल्दी उठेगी। लेकिन उसकी आंखों में आंसू भर आते हैं···।

पता नहीं उसकी आंख जल्दी क्यों नहीं खुलती। चलते हुए वो कितना परेशान था। आज भी मैले कपड़े ही पहनकर गया है। रात कपड़े धोए थे, मगर सबेरे तक सूखे ही नहीं। दिन में धो नहीं सकी। घर में साबुन नहीं था। शाम को एक साबुन वाले से उधार लिया।

वह सोच-सोच कर परेशान हो उठती है···यह गृहस्थी कैसे चलेगी? ये बच्चे कैसे पलेंगे? भगवान न करे कोई बीमारी हो जाए तो इलाज के लिए घर में एक पैसा नहीं है। बीमारी का विचार आते ही उसे सास की चिट्ठी की याद आ गई। पिछले हफ्ते आई थी। लिखा था—"बीमार हूं, दवाई के लिए कुछ रुपए भेज दो।" उसी पत्र में इसके लिए काफी गालियां सुहालियां भेजी हैं। लिखा है—"अधिक चालाक बनती है, तेरे पास एक पैसा नहीं छोड़ती। तेरी इस जोरू को घर नहीं चलाना आता। बेटा! रुपए अपनी अंटी में रखा कर, जोरू के हवाले मत किया कर, वरना रुपया तो रुपया, साथ में तुझे भी चाट जाएगी। कहीं का भी नहीं छोड़ेगी, न घर का न घाट का।" आदि-आदि। पति देव चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते दुःखी और परेशान हो गए थे। उन्होंने उसे चिट्ठी पढ़ कर सुनाई थी। सुन कर वह देर रात रोती रही थी और सवेरे उठी तो उसकी आंखें सूज कर टेसू हो गई थीं।

आज फिर उसे रह-रह कर रोना आ रहा है। तीन सौ रुपल्लियों में वह क्या-क्या करे? तीन बच्चों का, अपना और पति देव का पेट पाले, मां के इलाज के लिए रुपए भेजे और अपना भी इलाज कराए? पिछले महीने

उल्टी-दस्त लग जाने से उसके शरीर में पानी की कमी हो गयी थी। डॉक्टर ने खून की भी कमी बताई थी। इसके अलावा वह दर्द से अक्सर परेशान रहती है। कभी कमर में बैठ जाता है तो कभी घुटनों में। इनकी अपनी सेहत ही कौन-सी दारा सिंह है? खांसते ऐसे हैं कि बस, देखते डर लगता है। सोचते-सोचते उसके माथे की नसें उभर आईं।

सीलन-भरी कोठरी·· तिस पर वह बुड्ढा मकान वाला, सुना-सुना कर चीखता है – "महंगाई बढ़ गई है। अस्सी रुपए किराए से कुछ नहीं होता। किराया बढ़ाओ या कोठरी खाली कर दो" जैसे महंगाई इसी के लिए बढ़ी है, हमारे लिए नहीं बढ़ी। किराएदारों को तो जैसे सारी चीजें सस्ती मिल जाती हैं। साठ रुपए तो दूध में निकल जाते हैं। जबकि घर में छोटे मुन्ने को छोड़कर और कोई दूध नहीं पीता। बाकी सब चाय पीते हैं, पर उसमें भी तो दूध की खपत होती है। कुछ दिन हुए मुनिया ने दूध पीने के लिए जिद की थी, तो कितनी मार पड़ी उस पर। पहले उसी ने थप्पड़ मारा था, फिर उसके पति ने। बच्ची को मारते हुए उसने कहा था —"तीसरी में पढ़ती है और दूध मांगती है? मालूम है, दूध कितना महगा हो गया है? यही क्या कम है कि दिन में एक-दो टाइम चाय पीने को मिल जाए।"

सत्तर रुपए का राशन आता है। तीस रुपए महीना इन्हें जेब खर्च चाहिए। आखिर दिन भर मेहनत करते हैं, मशीनों के साथ खटते है, कुछ तो चाहिए। इसी तरह सारी कमाई खर्च हो जाती है। कपड़े खरीदने के लिए तो पैसे बचते नहीं। दवा-दारू राम-भरोसे!! पिछली सर्दियों में पांच रुपए सैकड़ा पर उधार लिए थे। वे रुपए अभी तक चुकाए नहीं जा सके और ब्याज बढ़ता जा रहा है। तीन साल हुए फैक्टरी से चार सौ रुपए का कर्ज लिया था। उसमें से आधे से ज्यादा की किश्तें अभी बकाया हैं। अब ये दोनों लड़कियां बड़ी होने लगी हैं, इनका ब्याह कैसे होगा? बचत तो होती नहीं, उल्टा कर्ज बढ़ता जाता है···।

इसी सोच ने उसे कई बार परेशान किया है और उसे 'सुदूर भविष्य' समझकर टालती रही है। आखिर एक दिन तो वह वर्तमान बनेगा ही। तब क्या होगा? उसे लगता है जैसे अभी से उसके पांवों के नीचे की जमीन

खिसकने लगी है···समस्याओं पर समस्याएं···परेशानियों पर परेशानियां ···अंधेरा ही अंधेरा···रोशनी की सिर्फ एक किरण है जो बंद किवाड़ के सूराख में से इस कोठरी के अन्दर झांक रही है। यह एक किरण क्या कोठरी का अंधेरा दूर कर सकेगी ?

शारदा नंदन

हिमालय की गोद में एक सुंदर बालक ने जन्म लिया। बालक के बाल रेशम की तरह मुलायम थे। उसकी आंखें बड़ी-बड़ी और नाक नुकीली थी। उसे जन्म देने के तुरन्त बाद उसकी मां स्वर्ग लोक सिधार गई। बच्चे ने जब आंखें खोलीं तो मां सामने नहीं थी। उसके चार भाई और चार बहनें थीं। किंतु मां के न होने के कारण वह उदास-उदास रहता था। भाई-बहन उसे खूब प्यार करते, पर फिर भी उसकी उदासी कम न होती।

बालक चार वर्ष का हुआ, तो उसकी उदासी और बढ़ गई। हिमालय की घाटी में और भी छोटे-छोटे घर थे। दूर से घरौंदों जैसे लगते। उन घरों में उसकी उम्र के और बच्चे भी थे। सबकी माताएं उन्हें भरपूर दुलार देतीं। बस, वही बेचारा मां के प्यार के लिए तरसता रहता था।

बालक का नाम था गोपाल। उसकी उदासी देख, घर वाले उसे गुसांई कहकर पुकारते। लेकिन उसे वह नाम अच्छा न लगता। उसने अपना नाम बदलकर 'नंदन' रख लिया।

एक दिन नंदन को उसके भाई-बहनों ने खूब फटकारा। नंदन का दिल भर आया। वह सुबक-सुबकर रोने लगा। इस पर सबसे बड़े भाई ने उसे और डांटा। कई थप्पड़ लगाए। चुप हो जाने के लिए कहा। पर नंदन का रोना नहीं रुका। उसके बाद, घर के लोग उसे रोता छोड़ अपने-अपने कामों में लग गए। लेकिन बहनों का मन पिघल उठा। वे उसे पुच-

काटने लगीं। किंतु नंदन अब भी चुप नहीं हुआ। आखिर बहनें भी उसे छोड़, अपना काम देखने लगीं। पिता कहीं बाहर गए हुए थे। रोते-रोते नंदन घर से बाहर आ गया।

शाम हो गई थी। आकाश में लाल सूरज़ धीरे-धीरे डूबता जा रहा था। नंदन ने उधर देखा। पहाड़ की चोटी पर सतरंगी पोशाक में एक सुन्दर परी खड़ी थी। मुसकराकर उसे बुला रही थी।

नंदन घर से तो रूठा हुआ ही था। वह उधर चल दिया। चोटी के पास पहुंचा, तो परी नीचे उतर आई। उसने नंदन को अपनी गोद में उठाकर चूमा। कहा—"नंदन! अच्छे बच्चे रोते नहीं। जीवन के दुखों का वीरता के साथ मुकाबला करते हैं।"

"तुम कौन हो? मेरा नाम कैसे जानती हो?"—नंदन ने कुतूहल से पूछा।

परी ने उससे कहा—"मैं भावलोक की परी हूं।"

नंदन ने फिर पूछा—"और तुम्हारा घर कहां है?"

परी ने उसे एक बार फिर प्यार किया। बोली—"यह सारा सुन्दर प्रदेश मेरा घर है। आकाश ही मेरे घर की छत है। ये पहाड़ उसकी ऊंची-ऊंची दीवारें हैं। मैं बादलों पर बैठकर इधर-उधर घूमा करती हूं। तुम मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें झील में लहरों की सवारी कराऊंगी। पहाड़ों की चोटियों पर बैठाऊंगी। बादलों पर बैठाकर समुद्र के पार ले जाऊंगी। बोलो, चलोगे मेरे साथ?"

"मैं चलूंगा। जरूर चलूंगा। मुझे ले चलो, पर, मेरे भाई-बहन और पिता मुझे खोजेंगे, तब···"—नंदन बोला।

—"रात को जब सब सो रहे होंगे, मैं तुम्हारे घर आऊंगी। तुम भी आंखें मूंदकर पड़े रहना। मैं तुम्हें चुपचाप उठाकर ले जाऊंगी। रात भर सैर कराने के बाद सवेरे सबके जागने से पहले बिस्तर पर छोड़ जाऊंगी। किसी को भी पता नहीं चलेगा। सब यही सोचेंगे कि तुम रात भर अपने बिस्तर पर ही सोते रहे हो।"—परी ने हंसकर कहा।

नंदन को परी की बात भा गई। रात को परी आई। अपने साथ ले गई। सबसे पहले वे तारों के लोक में पहुंचे। वहां आकाश गंगा में उन्होंने नौका

विहार किया। उसके बाद परी उसे चांद पर ले गई। चंद्रलोक की सैर करने के बाद दोनों एक सरोवर के तट पर उतर गए। सरोवर हिमालय के बीचों-बीच था। चारों तरफ ऊंचे पहाड़ थे। पास के पहाड़ी ढलानों पर देवदारु के वृक्ष थे। सरोवर का पानी दूध-सा सफेद था। उसमें सुंदर-सुंदर, लाल गुलाबी, नीले, पीले और सफेद कमल खिले थे।

झील के एक तरफ अंगूरों की बगिया थी।

परी ने कहा—"नंदन, यह झील स्वादिष्ट दूध से भरी है।"

नंदन को तीन दिन दूध नहीं मिला था। परी ने कमल के पत्ते का दोना बनाकर उसे पिलाया। दूध के बाद बालक को उसने अंगूरों का एक गुच्छा दिया। फिर एक सुंदर मछली को बुलाया।

नंदन उसकी पीठ पर बैठ गया। झील की सैर करने लगा। एकाएक उसे संगीत की मधुर तान सुनाई दी। उसने चौंककर बाईं ओर देखा—परी एक कमल पर बैठ गई थी। वीणा बजा रही थी। साथ ही मधुर स्वर में कुछ गुनगुना भी रही थी।

नंदन मंत्र-मुग्ध होकर सुनता रहा। उसके बाद, परी उसे वापस घर ले आई। उसके सिरहाने बैठ गई। न जाने कब बालक को नींद आ गई।

अगले दिन जब नंदन सवेरे उठा, तो वह उदास नहीं था। हंसते हुए वही गीत गुनगुनाने लगा, जो रात को परी ने सुनाया था। रोज रात को वह परी आती नंदन को अपने साथ ले जाती। उसके साथ वह जंगलों में, कभी फलों के बागों में, कभी समुद्र के किनारे कभी पहाड़ की चोटियों पर, कभी नदियों और झीलों पर तो कभी बादलों के लोक में जाता। नंदन खूब हंसता-खिलखिलाता। एक दिन उसने अपनी ही तरह की एक बालिका को एक घाटी में बैठे देखा।

"यह कौन है?"—नंदन ने पूछा।

"यह हमारे लोक की चित्रकार है। जितने भी रंग तुम यहां देखते हो, सब इसी ने भरे हैं।"—परी मुस्करा उठी।

—"किन्तु यह तो मेरे जितनी छोटी है!"

परी बोली— "तो क्या? इतने सारे रंग भरने की शक्ति तो तुम जैसे बच्चों में ही होती है। इसीलिए तो बच्चे मुझे बहुत अच्छे लगते हैं।" नंदन

चुप हो गया।

परी उसे मीठे और स्वादिष्ट फलों के पेड़ों पर बैठा देती। वह जी भर कर फल खाता। फिर वह सुरीले गीत सुनाती। उसे दुलारती। कभी उसके साथ झगड़ती। वह रूठ जाता, तो झट मना लेती।

अब नंदन उदास बालक नहीं था। वह सदा प्रसन्न रहता। खेलता, पढ़ता और रात में परी का इंतजार करता। उसने अपने साथियों को नहीं बताया कि उसके पास एक परी आती है, जो मां की तरह प्यार करती है।

(महाकवि सुमित्रानन्दन पंत के बचपन पर आधारित।)

पिस्तो

वे लोग मद्रास से आए थे और पड़ोस में रहने लगे थे। पिस्तो उनकी एकमात्र बेटी थी। उसकी उम्र उस समय लगभग 14 वर्ष की रही होगी। उसका एक छोटा भाई था जिसे वह हरदम अपने साथ रखती। उनकी बैठक में लकड़ी का एक सुन्दर और कलात्मक रूप से साज-सज्जित मंदिर था। मन्दिर में राधा और कृष्ण की युगलमूर्ति विराजमान थी। मुझे ठीक-ठीक याद नहीं है लेकिन कुछ और देवी-देवताओं की मूर्तियां और तस्वीरें भी रहीं होंगी। उनके यहां हर रविवार को कीर्तन होता और हमें (यानी मैं और मेरे भाइयों को) प्रसाद मिलता। कीर्तन के बाद पिस्तो अपने हाथ से हमें प्रसाद देती। हर शनिवार जब मैं रात को सोने लगता तो यह याद आते ही जी प्रफुल्लित होने लगता कि कल तो रविवार है; स्कूल से छुट्टी होगी; सुबह पिस्तो के यहां कीर्तन होगा और उसके हाथ से प्रसाद मिलेगा। सवेरे-सवेरे नहा-धोकर' बालों में कंघी कर, आंखों में काजल आंज कर उनकी बैठक में जा बैठता। पिस्तो के मधुर कंठ से कीर्तन शुरू होता। उसके पिता की खरखरी आवाज भी पिस्तो के स्वर में घुलमिल जाती। जोर-जोर से वे कोई वाद्ययंत्र बजाते। दो-चार परिचित आ बैठते। ढोलक बजने लगती और कीर्तन के समवेत-स्वर गूंज उठते। स्वरों में विविध कंठों और वाद्ययन्त्रों की मिली जुली आवाजें होतीं। पिस्तो का स्वर उन आवाजों में मिश्री घोलता-सा सुनाई पड़ता। भजन दक्षिण भारतीय भाषा में होते इसलिए हमें समझ नहीं आते लेकिन

जब बीच-बीच में राम, कृष्ण आदि देवताओं के नाम आते तो हम साथ-साथ गा उठते। भजन के बोल समझ में न आने पर तन्मयता के साथ हमारे होठ चलते रहते। मेरे साथ भय्या बलवीर और यशपाल भी होते। लेकिन मेरा कंठ ऊंचा होता और कीर्तन में शामिल रहने की लगन को जताता रहता। पिस्तो मेरा लिहाज करती और ज्यादा प्रसाद मुझ पर ही लुटाती।

पिस्तो के पिता सांवले रंग के कद्दावर लेकिन थुलथुल आदमी थे। वे किसी दफ्तर में छोटे-मोटे अफसर थे। अक्सर टैक्सी से दफ्तर जाते और टैक्सी से ही लौटते। उनकी रईसी का यही पहला लक्षण था जिसने मुझे प्रभावित किया था। हर रविवार प्रसाद में मिठाई लुटती थी। यह मेरे लिए उनकी सम्पन्नता का दूसरा लक्षण था।

पिस्तो की मां गौर-वर्णी छरहरे बदन की खूबसूरत लेकिन चिड़चिड़े मिजाज की औरत थी। उनके और हमारे गुसलखानों के बीच एक दीवार थी जिसके दोनों तरफ गुसलखाने थे और उन पर टीन की छतें थीं। मैं उसी पर चढ़कर आस-पड़ोस की गतिविधियों का जायजा लेता था। एक दिन पिता के पास मेरी शिकायत पहुंच गई और पिटाई हुई। मां मेरा पक्ष लेते हुए पिता से लड़ पड़ी थी और बोली थी—

ये मां-बेटी हरामजादियां हैं। कोई हूर की परियां नहीं हैं कि मासूम बेटे पर तोहमत लगाती हैं। मेरा बेटा छत पर चढ़ेगा और जरूर चढ़ेगा! मैं देखूंगी कोई कैसे रोकता है।

कहते हुए मां मुझे पिता के गुस्से से बचाने के लिए दूसरे कमरे में ले गई थी और पड़ोस को सुना-सुना कह रही थी कि मेरा बेटा बारह वर्ष का बबुआ इन मुस्टंडियों को क्या देखेगा! लेकिन मुझे मन-ही-मन मां पर ही गुस्सा आ रहा था क्योंकि मैं डरता था कि अगर पिस्तो ने सुन लिया तो मनमुटाव की खाई इतनी चौड़ी हो जाएगी कि फिर पाटे न पटेगी। हल्के से मां को कुछ-कुछ समझाने के स्वर में कहा था—धीरे बोलो!

मां ने अष्टम स्वर में चीख कर कहा था—क्यों धीरे बोलूं? किसी का डर है क्या?

असल में इस शिकायत का एक और कारण था। पिस्तो की एक नानी

थी जो उन्हीं के यहां रहती थी। इस बीमार बुढ़िया का सारा शरीर सूख गया था। वह हरदम कांपती रहती और उसे देख कर लगता कि हम किसी प्रेतात्मा को देख रहे हैं। जितनी देर वह जागती धीमे-धीमे चीत्कार-सा करती रहती। जब कभी वह जोर से चीत्कार करती तो उसकी बेटी, यानी पिस्तो की मां उसे डांट कर चुप कर देती। थोड़ी देर के लिए सन्नाटा छा जाता उसके बाद उसका धीमा-धीमा चीत्कार फिर सुनाई पड़ता। ऐसा लगता जैसे कबूतरों की गुटरगू सुनाई दे रही हो।

अब जब भी मैं कहीं कबूतरों की गुटरगूं सुनता हूं तो मुझे पिस्तो की नानी का धीमा-धीमा चीत्कार याद आ जाता है। एक दिन तंग आकर दुखी होती हुई पिस्तो की मां उसे डांट रही थी। उनके भीतरी ओपन-एयर आंगन में यह प्रसंग चल रहा था। मेरे घर के भीतरी आंगन तक उसकी भनक मेरे कानों में पड़ रही थी। तमाशा देखने की ललक में बंदर की तरह दीवार फांद कर फुदकता हुआ गुसलखाने की छत पर आ गया और टुकुर-टुकुर देखने लगा। पिस्तो की मां ने मुझे बड़े-बड़े लाल-पीले दीदों से ताका। उसके एक-दो दिन बाद मेरी शिकायत हो गई और पिता तक पहुंच गई। मजे की बात यह थी कि मां ने ही मेरी शिकायत पिता तक पहुंचाई थी और मुझे मार पड़ने पर मां ने ही मेरे समर्थन में मोर्चा संभाल लिया था।

मेरा पिटना पिस्तों की मां को अच्छा लगा होगा लेकिन पिस्तो ने मुझसे हमदर्दी जताई थी।

मैं उसे रंग-बिरंगे कागजों पर मछलियां बना-बना कर देता और वह खुश होकर उन मछलियों को सीने से लगा लेती। फिर पुरस्कार स्वरूप मुझे अगले रविवार और अधिक प्रसाद मिलता। इतना कि मुझे लगता जैसे सुबह का नाश्ता हो गया।

वे दिन भी क्या दिन थे। उस समय पिस्तो के लिए मैं संसार का सर्वश्रेष्ठ चित्रकार था और मेरे लिए वह अनुपम स्वप्नलोक की राजकुमारी!

देखने में पिस्तो सचमुच राजकुमारी जैसी लगती। दहकते हुए कुन्दन से बनी प्रतिमा की तरह उसकी देह! गुलाबी आभा लिए मुख! भरे हुए कपोल! मादक और विशाल नोंकदार नयन जिनमें चमकदार काजल।

लम्बे और सघन केश जो सुडौल बाहों, सुराहीदार गर्दन और कमर पर तैरते रहते। चेहरा और मोहरा ऐसा कि जैसे किसी श्रेष्ठ मूर्त्तिकार की कलाकृति-सी! लम्बाकद। रंगीन पट्टीदार ब्लाउज और मैच करता हुआ गरारा जो घुटनों से थोड़ा ही नीचे तक लहराता था। रंगीन कपड़ों में वह स्वप्नलोक की राजकुमारी ही लगती थी। जब वह घर से बाहर सजधज कर निकलती तो मैं घर के बाहरी आंगन में शीशम और नीम के पेड़ों की मिश्रित घनी छाया में खाट डालकर उस पर पड़ा अर्द्ध-निमीलित नेत्रों से निहारता रहता, उसकी एक-एक भंगिमा को आब्जर्व करता हुआ! कई बार वह अपने बरामदे की सीढ़ी पर बैठी जमीन पर पांव फैलाए चन्दामामा पढ़ती। उसकी देखा-देखी उसी से मांग-मांग कर मैं भी चन्दा-मामा पढ़ने लगा। चन्दामामा की किसी कहानी में किसी राजकुमारी का वर्णन होता तो मेरी आंखों के सामने पिस्तो की आकृति नमूदार हो उठती। एक दिन मैंने मौका देखकर उससे कह ही दिया—

चन्दामामा की कहानियों में जो भी राजकुमारी आती है वह तुम्हारे ही जैसी लगती है।

उसने शरमा कर मुस्कराते हुए उत्तर दिया—और जो भी राजकुमार उन कहानियों में आता है वह तुम्हारे जैसा होता है।

पिस्तो मुझसे उमर में दो या तीन साल बड़ी ही होगी। उन दिनों उसे संगीत और नृत्य की शिक्षा दी जाने लगी थी। उसका मधुर कंठ-स्वर और पखावज-स्वर गूंज-गूंज उठता और उसकी अनुगूंज से हमारा घर भी भर जाता। भीतरी आंगन में वह थिरक कर नाचती तो मैं गुसलखाने की छत पर चढ़कर देखने लगता। कुछ देर वह नाचती और मेरी ओर इस अन्दाज से देखती कि मेरी उपस्थिति से वह बेखबर थी और फिर तत्काल घर के अन्दर चली जाती। उसके जाने के बाद भी उसके पांवों की थिरकन और गतिभरी ताल की अनुगूंज मेरे कानों में अमृत की फुहार-सी भर देती। रोम-रोम जैसे लयात्मक हो उठता। उन्हीं दिनों मेरे भीतर सोया राग-विराग जैसे हिलोरें लेने लगा था और जीवन में पहली बार अनायास मैं गुनगुना उठा था।

दिन इसी तरह मायावी होकर गुजर रहे थे कि हमारे परिवार पर

वज्रपात हुआ। दिन भर के थके-हारे पिता दफ्तर से घर लौटे थे। शाम ढल चुकी थी। हमारे घर में एक भैंस थी जो भीतर आंगन में पिछवाड़े के दरवज्जे के पास सर्वेन्ट रूम के सामने बंधी रहती थी। जैसे ही पिता दफ्तर से घर लौटते थे भैंस उकी आहट पाकर पुकार उठती थी। पिता 'अभी आया' कह कर उत्तर देते और कपड़े बदलते। फिर हाथ मुंह धोकर मां को आवाज लगाकर कहते— भागवान ! जरा बाल्टी देना ! मां धोकर साफ मंजी हुई बाल्टी उन्हें थमा देती । बाल्टी लेकर वे भैंस के नजदीक जाते। भैंस को थपकियां देकर पुचकारते और फिर दूध निकालने वैठ जाते।

उस दिन भी रोज की तरह वे दूध निकालने बैठे तो जैसे हाथों का सत जाता रहा। धार निकालना ही दूभर हो रहा था। अंधेरा घिर आया था। धार निकालते-निकालते बोले-- भागवान ! जरा आइयो !! मेरे से तो आज धार निकाली नहीं जा रही !

मां रसोई में सब्जी बना रही थी। 'अभी आई।' कहकर भी वह अपने काम में मशगूल रही। पिता को आवाज लगाए कोई पांच मिनट भी न बीते होंगे कि बाल्टी के ठक से गिरने की आवाज हुई। फिर भैंस के पुकारने की आवाज आई। मां यह सोचकर दौड़ी कि भैंस ने लात मार कर दूध गिरा दिया है लेकिन वहां पहुंच कर देखा तो जोर से चिल्लाई !

मां की चीख सुनकर सारा परिवार वहीं आकर इकट्ठा हो गया। सबके हाथ-पांव फूल गए थे। पिता दूध में नहाए चित जमीन पर पसरे पड़े थे। पिता को उठाकर भीतर आंगन में नेवार के पलंग पर लिटाया गया। डॉक्टर बुलाया गया। उसने एक इन्जेक्शन दिया। पिता के मुंह में पानी डाला गया तो गड़गड़ की आवाज के साथ पिता ने एक जोर की हिचकी ली। पिता की यह आखिरी हिचकी थी। उसके बाद उनकी आखें खुली की खुली रह गईं मानो आकाश-भाष कर रही हों। गहरी सोचनाक मुद्रा में आकाश की ओर ताकते हुए चिन्तामग्न पिता इस संसार से कूच कर गए थे। घर में कोहराम मच गया था और पैंतीस साल की युवती मां विधवा हो गई थी। पुष्टि के लिए नई सड़क के एक नामी डॉक्टर को लाया गया जिसने दूर से ही पिता की आंखों में झांका, हल्के से आंखों के

ऊपरी हिस्से पर हाथ छुआया और शांत स्वर में उचारा—'नो लाइफ !'

खेल खत्म हो गया था और उसके साथ ही मेरी खेलने की उम्र भी। उसके बाद मुझे याद नहीं कि जीवन में मन लगाकर मैंने कोई भी खेल कभी खेला हो !

पिता के चले जाने के बाद हमें सरकारी मकान छोड़ना पड़ा। यह एक दूसरी मुसीबत थी। पिता सरकारी अफसर थे। उनकी तनख्वाह पर ही गुजारा होता। पिता गए, उनकी मासिक तनख्वाह गई और मकान भी गया। भरा पूरा परिवार। लाख कोशिश करने पर भी मां की पेंशन नहीं बंधी। कहा गया कि नौकरी की अवधि उतने से कम थी जितने पर कि पेंशन का मामला मंजूर हो पाता। उन दिनों सरकारी नियम ही कुछ ऐसे थे। लेकिन दफ्तर ने एक मेहरबानी की। बड़े भाई को एक क्लर्क की नौकरी दे दी और पिता की सेवाओं का ध्यान रखते हुए एक छोटा-सा सरकारी क्वार्टर भी अलाट कर दिया।

एक दूसरे मुहल्ले में हमें वह छोटा-सा सरकारी क्वार्टर रहने को मिला। पिछला मकान काफी बड़ा था। एक ड्राइंग रूम, एक रिटायरिंग रूम, एक पार्लर (बैठक), एक ग्लास रूम और एक सर्वेंट रूम। रसोईघर तो आजकल के हॉल की मानिन्द था। घर के बाहर एक सहन था; बाहरी बरामदा था। घर के अन्दर एक खुला सहन था जिसमें हम तोरी, भिंडी और घिया बोते थे। गैंदे के पौधे उगाते थे। सहन से सटकर एक भीतरी बरामदा था जो काफी लम्बा और चौड़ा था। उस बरामदे में बैठकर मां नेवार बुना करती थी। बरामदे के एक कोने में एक देसी चक्की रखी रहती थी। बरामदे के एक तरफ एक स्टोर था उतना ही बड़ा जितने कि आजकल कमरे होते हैं। उस तरह के सरकारी मकान सपना हो गए हैं। अब तो उतनी जगह में आजकल के आठ फ्लैट खड़े हो सकते हैं। जमुना के किनारे तिमारपुर नाम की बस्ती में सी-टाइप सरकारी क्वार्टर उस समय इतने खुले होते थे। ये क्वार्टर एक मंजिल के होते थे अतः छत का जो आराम था सो अलग।

खैर, यह छोटा क्वार्टर बहुत छोटा था। सिर्फ दो कमरे वह भी जमीन से एक मंजिल ऊपर, एक बाल्कॉनी, छोटी-सी रसोई और भीतरी बरामदा, बस। वैसे आजकल जो क्वार्टर बनते हैं उनकी तुलना में यह फिर भी बड़ा

था। लेकिन हमारे परिवार में उस समय दो बड़े भाई विवाहित थे, छः छोटे भाई, एक बहन कौशल और मां। ये सभी लोग उस क्वार्टर में रहने लगे। शुरू-शुरू में लगता था कि पिता के बाद उनके भरे पूरे परिवार को किसी ने जबरदस्ती एक पिंजरे में ठूंस दिया है।

लेकिन इन परेशानियों से भी बढ़कर मेरे लिए कहीं ज्यादा परेशानी यह रही होगी कि पिस्तो से मेरा नाता लगभग टूट गया था। पहले तो हम पड़ोसी थे। पड़ोसियों जैसी बातें थीं। उसी तरह के हालात थे। अब हम पड़ोसी नहीं रहे थे और पड़ोसियों जैसी बात नहीं रही थी। इसी बीच पिस्तो की नानी की मृत्यु हो गई।

कुछ दिनों बाद सुना कि पिस्तो के पिता की भी मृत्यु हो गई। सुनने में आया था कि उन्हें मधुमेह की बीमारी थी जो धीरे-धीरे जोर पकड़ती गई थी। तब यह भी समझ में आता कि पिस्तो के पिता का टैक्सी में दफ्तर जाना और टैक्सी में दफ्तर से घर आना एक मजबूरी थी कोई रईसी नहीं थी। एक दिन उधर गया तो पता चला कि पिस्तो अपनी मां और छोटे भाई के साथ दक्षिण भारत चली गई है।

उसके बाद पिस्तो से कभी वैसी मुलाकात नहीं हुई।

इन घटनाओं को बीते आज तीस बरस गुजर चुके हैं। बहुत-सी बातें भूल गई हैं और याद करने पर भी याद नहीं आ रहीं। हां इतना याद है कि अपने पिता की मृत्यु के बाद और पिस्तो के पिता की मृत्यु के बाद दोनों अवसरों पर पिस्तो के गले लगकर जी भरकर रो लेने की एक उत्कट अभिलाषा ने मुझे काफी परेशान किया था लेकिन दोनों अवसरों पर उसकी मां की सतर्कता आड़े आ गई थी और मेरी यह अभिलाषा पूरी नहीं हो पाई थी।

पिस्तो अपने परिवार के साथ 1954 के आसपास दक्षिण भारत चली गई। दस वर्ष बाद सन् 1963-1964 के दौरान एक दिन यकायक एक व्यक्ति मुझे कॉफी हाउस में मिला और हम दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। यह व्यक्ति दस वर्ष पहले पिस्तो को संगीत और नृत्य की शिक्षा देने उसके घर आया करता था। संगीत मास्टर से मैंने पूछा —

मैदुली आजकल कहां है?

उसका नाम शायद यही था। उसके माता-पिता उसे इसी नाम से

बुलाते थे । लेकिन हम सभी भाइयों ने उसका नाम पिस्तो रख लिया था। याद नहीं आता कि यह नाम हमने क्यों रखा । पहले वह पिस्तो नाम से चिड़ती थी । बाद में उसने बुरा मानना छोड़ दिया । मेरे बड़े भाई मुझे बाद में 'पिस्तो' कहकर छेड़ते थे । यानी पिस्तो मेरी चिड़ हो गई थी । संगीत मास्टर बोला – वह बहुत पापुलर डांसर है । एक नृत्य समारोह में भाग लेने अगले महीने दिल्ली आ रही है ।

मैं अब वयस्क था । लेकिन विवाह अभी नहीं हुआ था । हिंदी-साहित्य का पोस्ट ग्रेजुएट हो गया था और एल एल. बी. कर रहा था । शरत् के उपन्यास पढ़ता था । स्वयं को देवदास या श्रीकांत समझता और दिलीप कुमार तथा वैजयंतीमाला वाली देवदास फिल्म लगभग आधी दर्जन बार देख चुका था । 'देवदास' फिल्म में चंद्रमुखी को देखकर मुझे पिस्तो की याद आ जाया करती थी । हालांकि बचपन के सादृश्य को देखें तो मुझे पारो को देखकर पिस्तो की याद आनी चाहिए थी । फिल्म कई बार देखने के एक अरसे बाद मेरे जहन में पारो और चन्द्रमुखी की आकृतियां घुलमिल कर एकाकार हो गयीं थीं और अब वह घुली-मिली एकाकार नारी-मूर्त्ति मेरी स्मृतियों में पिस्तो की पर्यायमूर्त्ति बनकर उभरती थी । शरत् के श्रीकांत पर हिंदी में फिल्म नहीं बनी । श्रीकांत की राजलक्ष्मी की कल्पना करता तो मुझे पिस्तो की याद आ जाती । चंदामामा की राजकुमारी की जगह शरत् की नायिकाओं ने ले ली थी ।

ऐसी ही श्रीकांत-मुद्रा में मैं पिस्तो का नृत्य-समारोह देखने गया । समय से पूर्व नृत्यशाला में पहुंचा । रंगशाला के आगे-पीछे दाएं-बाएं मैंने बड़े चक्कर लगाए कि पिस्तो से सामना हो और वह मुझे पहचान ले । लेकिन कई बार टोका गया । पिस्तो से एक बार जैसे-तैसे सामना हुआ भी पर उसने नहीं पहचाना । हारकर मैंने सबसे आगे का टिकट लिया और नृत्य देखने के लिए अपनी सीट पर बैठ गया ।

लगभग 40 मिनट तक दो छोटे-छोटे अन्तरालों के साथ पिस्तो का नृत्य हुआ । उस दौरान मैं सीट से उचक-उचककर देखता कि शायद पिस्तो मुझे देखकर पहचान ले । दो बार सिग्रेट पीने के बहाने शो के दौरान उठा भी । लेकिन सब चेष्टाएं असफल रहीं ।

समारोह के बाद मैं ढीठ और उद्दंड मुद्रा में बदहवास होकर रंगशाला के पीछे के साज-सज्जा-कक्ष में घुस गया। एक दो कार्यकर्त्ताओं या वालैंटियरों ने टोका तो मैंने बड़ी धौंस के साथ कह दिया कि मुझे 'उनसे' मिलना है। मैं 'उन्हें' जानता हूं। कार्यकर्त्ताओं या वालैंटियरों (वे जो भी थे) ने यह सुनकर मुझे नहीं रोका और भीतर जाने दिया। मुझे देखकर उसने अपने एक साथी से पूछा—

ये कौन बार-बार इधर चक्कर काट रहा है ?

तुम्हारा कोई मिलने वाला है ! उस साथी नें उत्तर में कहा।

मेरा ? कहकर वह चौंकी और मुझे अपनी ओर घूरते देखकर मुझी से मुखरित हुई—

कौन हो तुम ? क्या चाहते हो ??

उत्तर में मैं कुछ नहीं बोला। चुपचाप आत्मीय दृष्टि के साथ उसे निहारता रहा और मन ही मन सोचता रहा कि अभी पहचान लेगी तो सहज हो आएगी। लेकिन वह नहीं हुई। गौर से मुझे देखती रही। फिर बोली—

क्या खड़े-खड़े उजबक की तरह मुंह ताक रहे हो ? बोलते क्यों नहीं ?? क्या काम है !!

अंतिम वाक्य खंड में कोई जिज्ञासा, कोई कोतूहल नहीं था। सिर्फ आदेशात्मक टोन जिससे ध्वनि निकलती थी कि बाहर चले जाओ !

फिर उसने एक दड़ियल लम्बे और घुंघराले बालों वाले तन्दुरस्त आर्टिस्टनुमा नवयुवक से बड़े आत्मीय अन्दाज में कहा - कौन है; तुम बात करो !

मैं पिस्तो के बिल्कुल नजदीक चला आया और झुककर उसके कान के पास मुंह लाकर मैंने उसे समझाने और खुद की पहचान जाहिर करने की कोशिश की थी।

मैं समझी नहीं। उसने कहा।

मैंने फिर विस्तार से अपना परिचय दिया। मैं धीमे बोल रहा था इतना कि किसी दूसरे को मेरी बात सुनाई न दे। दे भी तो उन्हें समझ न आए। लेकिन सभी आर्टिस्ट जो अपनी-अपनी गुफ्तगू में मस्त थे मेरी ओर एकाग्र-

चित्त हो गए थे। वहां सन्नाटा छा गया था और मेरी धीमी आवाज भी जैसे गूंजने लगी थी।

—आप दस बरस पहले दिल्ली में तिमारपुर मुहल्ले में रहती थीं ;

—हां रहती थी।

—91-सी में रहती थीं, मैं 92-सी में। मेरा नाम ˙ है।

हम एक-दूसरे को बहुत लाइक करते थे।

कहां तो वह तनावपूर्ण ढंग से रूखे लहजे में बात कर रही थी और कहां वह खिलखिलाकर हंस पड़ी। मैंने समझा। पहचान गई है। इसीलिए सहज होकर मुक्त ढंग से अट्टहास कर रही है। लेकिन फिर समझ में आया कि यह अट्टहास सहज नहीं था। क्रूर और कठोर था—हिकारत से भरा। वह कह रही थी—तुम्हारा अन्तिम वाक्य "···लाइक करते थे" खूब मजेदार है। और वह सभी उपस्थितों को सुनाकर मेरा उल्लू बनाते हुए बोली—सुना सबने। मैं इन्हें बचपन में बहुत लाइक करती थी ··मान न मान मैं तेरा महमान ! महमान नहीं शैतान ! शैतान !!

सभी हो-हो करके हंसने लगे।

फिर वह सहसा गंभीर हो गई। और मुझे दया भरी हिकारत और औपचारिक आत्मीयता के साथ समझाने के से अन्दाज में बोली – बचपन में कितने लोग कितने साथियों के साथ खेलते हैं। क्या सभी एक-दूसरे को लाइक करते हैं ? यह लाइक वाली बात खूब रही और फिर वह खिलखिलाकर हंस पड़ी।

यह सरासर अपमान था लेकिन मेरे सिर पर से 'श्रीकांत' बनने का भूत अभी पूरी तरह नहीं उतरा था। मैंने बड़ी ही संजीदगी के साथ कहा—एक पुराना साथी हूं। यही सोचकर मिलने चला आया। आपका नृत्य देखा और आपको देखा तो बचपन की बहुत-सी बातें याद आ गईं। इसीलिए सोचा आपसे मिलकर ही जाऊं !

—हां हां, ठीक है ठीक है। मैं तो कलाकार हूं। नृत्यकला देखने जो भी आता है उसे वैल्कम करती हूं। मेरी कला के सैकड़ों फैन हो सकते हैं। तुम भी मेरे फैन हो यह मेरे लिए खुशी की बात है !

कहते हुए उसने अपने लम्बे-लम्बे सुनहरी बालों को (जो बहुत तीव

खुश्बू से महक रहे थे और जिनकी खुश्बू मेरे नथुनों में इस कदर भर रही थी कि मैं मदहोश होता जा रहा था) एक गर्वीले अंदाज के साथ झटका दिया और कड़ियल गाय की तरह मेरी ओर निहारा।

उस आर्टिस्टनुमा युवक ने भी अपने लम्बे घुंघराले मेंहदी-रंगे बालों को लगभग उसी अन्दाज के साथ झटका दिया और मेरी ओर ताकने लगा।

मेरे भीतर का अतीत जैसे फटकर बाहर आना चाहता था। लगा कि अगर अब कुछ बोला तो बोला नहीं जाएगा। स्थिति ही ऐसी हो गई थी कि या तो आदमी रो सकता था या जोर से चीख सकता था। लेकिन ऐसा करना शिष्टाचार के विरुद्ध था। मैं जैसे समाधिस्थ हो गया और अंधकार के सिवा मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दिया।

उसी समय उसी घुंघराले बालों वाले तन्दरुस्त आदमी ने मेरे हाथ में एक गिलास पकाड़ते हुए कहा—लो फ्रेंड पियो!

मैं उसकी शिष्टता और आतिथ्य से प्रभावित तो हुआ लेकिन वहां एक भी पल और रुकना मेरे लिए असंभव होता जा रहा था। जीवन में शायद पहली बार मेरी इयत्ता को गहरी ठेस लगी थी। पिस्तो की नृत्यकला मेरे लिए और दुनिया के लिए चाहे कितनी ही अनुपम क्यों न हो किन्तु उसके एक फैन के रूप में ही जब मेरी अस्मिता शेष रह गई तो वहां अपनी उपस्थिति मेरे लिए असह्य हो गई।

मैंने केवल 'थैंक्यू' कहा और वहां से चला आया। जाते समय मैंने अंतिम बार पिस्तो की ओर निहारा था तो मुझे लगा था कि वह सौंदर्य की प्रतिमा नहीं रही। वहां ब्यूटी नाम की कोई चीज नहीं थी, सिर्फ ग्लैमर ही ग्लैमर था।

समर्पण

दोनों एक ही स्कूल में पढ़ने लगे थे। आधी छुट्टी में स्कूल के पिछवाड़े शीशम के पेड़ के नीचे कागज़-कलम घिसाई में माधव मगन था। मानो कलम की वंसी बजा रहा था। क्लास रूम में एक डैस्क पर परांवठा कुतरती हुई राधा खिड़की से बाहर झांक रही थी और उसकी वंसी सुन रही थी। मौका देखकर उसके पास आई और खड़ी हो गई।

क्या बात है? माधव ने पूछा।

यूं ही चली आई! क्या लिख रहे हो?

राधा ने पूछा। फिर, ज़रा देखूं तो, कहते हुए कागज झपट लिया।

तो तुम कविताएं लिखते हो?

मैं भी लिखती हूं।

माधव ने अपना कागज उससे वापस ले लिया और मोड़ कर जेब में डाल लिया।

कुछ नहीं बोलोगे? राधा ने स्वर में मिश्री घोलते हुए कहा और सवालिया निगाहों से उसकी आंखों में झांका। माधव कुछ नहीं बोला। प्रिंसीपल राउंड ले रही थी। राधा वहां से चल दी।

एक संभ्रात परिवार की लड़की। नई दिल्ली में बसंतविहार की एक तिमंजिली कोठी उसके पिता ने पिछले साल बनवाई थी। लोहामंडी में लोहे का बड़ा व्यापार। कुछ-कुछ दो नंबर का धंधा भी। राधा की मां एक कालेज़ में प्राध्यापिका थी। परिवार पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनों बहनों

का वरद हस्त था।

माधव बसंतविहार से सटी एक झुग्गी झोंपड़ी कालोनी में रहता था। पिता फैक्टरी में फिटरमैन थे। तीन बहनें थी। माधव बड़ा भाई था और बारहवीं जमात में पढ़ता था। राधा इससे पूर्व पब्लिक स्कूल में पढ़ती थी। लेकिन पढ़ाई में नालायक होने, बार-बार फेल होने और कुछ जरूरत से ज्यादा लड़कों में रुचि लेने के कारण उसके पिता ने उसे सरकारी स्कूल में दाखिला दिलवा दिया था। माधव की मां उनके यहां चौका-बर्तन और सफाई का काम करती थी। दो-सौ रुपए मासिक मिलता था और राधा के पिता कभी-कधार मूड़ में आकर राधा की मां से छिपाकर पांच या दस का जो नोट थमा देते थे सो अलग। छुटपन में माधव भी कभी-कभी मां के साथ मदद कराने आ जाता था लेकिन दसवीं पास करने के बाद उसे चौका-बर्तन करने में शरम लगती थी। इसलिए उसने मां के काम में हाथ बटाना छोड़ दिया था। राधा और माधव एक दूसरे से आत्मीयता महसूस करने लगे थे। विशेष रूप से माधव ऊपर से तो चुप लगता लेकिन राधा को लेकर उसके मन के भीतर स्वप्नों की झंकार गूंजती रहती थी।

राधा के मन में लेखिका बनने की साध जोर मारने लगी थी क्योंकि जीवन में एक यही काम उसे सबसे आसान और सुविधाजनक लगता था। लेकिन यही काम सबसे ज्यादा मुश्किल था। क्योंकि भाषा उसे जरा नहीं आती थी। अंग्रेजी वोलना वह सीख गई थी लेकिन लिखने के नाम भर वहां दुविधा थी। कई बार कागज कलम लेकर बैठती लेकिन जब कुछ भी न लिखा जाता तो फाड़-फूड़ कर दूसरे कामों में लग जाती। कभी-कभी दूसरे कवियों की रचना से फिकरे चुरा कर एक नई कविता रच देती और उसे अपनी कह कर सुनाती।

लेकिन माधव के हृदय में भाव और संगीत की लहरियां उठतीं। उसका मन हिलोरें लेता। वस पकड़ कर जमना के किनारे पहुंच जाता। वहां बैठ कर कविताएं लिखता और वापस घर चला आता।

राधा ने एक दिन माधव की मां से कहा—माधव कविताएं लिखता है। तुम कल चौका-बर्तन करने आओ तो माधव की सारी कविताएं ले आना मैं उन्हें पढ़ना चाहती हूं।

माधव की मां को राधा से काफी लगाव था। उसका आदेश उसके लिए ब्रह्मवाक्य था। घर में राधा यों भी पिता की लाड़ली होने के कारण सभी पर हावी रहती थी। बड़े भाइयों को वह बेवकूफ समझती थी। पिता को थोड़ी बहुत तरह देती थी। मां अक्सर बीमार रहती थी। वह अपने कमरे में पड़ी रहती। कभी तबियत ठीक होती तो घर में टहलने लगती। लेकिन बीमार होने के बावजूद घर की चाबी यह अपनी साड़ी में ही टांक कर रखती थी।

मकान की तीसरी मंजिल में भी दो दो कमरों वाले दो इंडिपैंडेंट सैट थे। बड़े दोनों भाई विवाहित थे। पिता ने उन दोनों की अलग-अलग दुकानें खुलवा दी थीं। दोनों अपनी-अपनी बीवियों और धन्धों में मस्त और मगन थे। इस परिधि के बाहर उन्हें दीन दुनिया की खोज खबर रखने की कोई ज़रूरत महसूस नहीं होती थी।

तीसरा भाई ग्रैजुएशन कर चुका था। उसने मंडी-हाऊस के आस-पास मंडराने वाले नौसिखिए कलाकारों की तरह लम्बे-लम्बे बाल और नाखून रखे हुए थे। कलाकार के तौर पर वह हरफ़नमौला था। कभी सुनने में आता कि उसने मस्त राम कपूर के फलां नाटक में एक रोल किया; तो कभी यह भी सुनने में आता कि वह रेडियो या टी. वी. पर एक कविगोष्ठी में शामिल हुआ। एकाध कहानी भी 'साहित्यिकी' में प्रसारित हो गई होगी। कनाटप्लेस में एक बार चौक के बीचों-बीच समाधिस्थ मुद्रा में उसे चित्रकारी करते हुए भी पाया गया। कला की हर विधा के गोष्ठी प्रसंग उसकी जुबान पर रहते और बड़े बड़े लिक्खाड़ उससे दहशत खाते। उसका नाम कैलाशचंद्र चौपड़ा था। लेकिन चौपड़ा और चढ्ढा जैसे नामों की गैर-साहित्यिक कैनोटेशंज़ के कारण वह अपने नाम के साथ चौपड़ा नहीं लगाता था लेकिन तर्क यह देता था कि ज़माना बदल गया अब जातपांत की पूंछ लगाने का क्या मतलब? चंद्र भी उसे जचता नहीं था। क्योंकि चंद्र शब्द से कुछ पुराण पंथी और कुछ-कुछ छायावादी छवि बनती थी। आधुनिक भाव बोध और आधुनिकतावाद का कट्टर हामी होने के नाते उसने अपना नाम 'कैलाश चॉप' रख लिया था।

हमारी राधा नाम की नायिका के मन में, अपने से चार वर्ष बड़े

भाई मिस्टर कैलाश चॉप की सोहबत के ही कारण लेखिका बनने की ललक जगी थी जो दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जाती थी। घटने का तो सवाल ही नहीं था।

राधा ने माधव की कविताओं को अपने कब्जे में ले लिया। फिर उन कविताओं को बिल्कुल हवा नहीं लगने दी। माधव ने भी उन कविताओं को लौटाने के लिए तकाज़ा नहीं किया। बस एक बार स्कूल के अहाते में उसे अकेली पाकर पूछ लिया—कविताएं कैसी लगीं, राधा ! अच्छी लगीं, बहुत अच्छी। राधा ने उत्तर दिया। तुम्हीं को समर्पित हैं। माधव ने कह दिया।

दोनों ने एक दूसरे को देखा। मौनाचार के बाद दोनों अपनी-अपनी राह हो लिए।

दो बरस गुज़र गए। राधा कालेज जाने लगी थी। माधव ने कालिज में दाखिला लेना चाहा लेकिन पिता ने अड़ंगी लगा दी।

मैं मज़दूर ठहरा। अय्याशी वाली पढ़ाई मेरे बूते का रोग नहीं। नौकरी करो और राम-राम भजो ?

लेकिन माधव ने जिद की—मैं आगे पढ़ूंगा। पिता बोले—तुम कॉलेज जाने को आगे की पढ़ाई समझते हो ? मैं तो उसे गुंडई और अय्याशी समझता हूं। वो सुना है ज्ञान प्रकाश का लड़का बुद्धि प्रकाश ! सात साल हो गए उसे पी एच. डी. करते और वो भी हिन्दी में। बाप बेचारे ने फैक्टरी में हाड़ खपा दिए। चलते-चलते गिर पड़ता है। खांसता है तो सारा शरीर पीपल के पत्ते की तरह कांपता है। मैंने उस दिन समझाया ज्ञान प्रकाश ! अब काम करने लायक शरीर नहीं रहा। घर बैठो। कुछ आराम करो। लेकिन जानते हो क्या कहा ?

कुछ रुक कर माधव के पिता ने कुछ इस अंदाज से कहा जैसे ज्ञान प्रकाश की नकल कर रहा हो। झिड़कें झिड़का रहा हो।

कहा कि बुद्धि प्रकाश कालेज में लेक्चरार हो जाए बस उसके बाद फिर चैन की कटेगी !

मैंने झल्लाकर पूछा-भले मानस, वह लेक्चरार कब होगा तेरह साल से तेरा यही राग सुनते-सुनते हमारे तो कान पक गए। कानों से राद निकलने

लगी है। और साथी भी हंस पड़े। ज्ञानप्रकाश ने रुआंसा होते हुए कहा— बस बुद्धि प्रकाश की पी. एच. डी. पूरी ही होने वाली है !

तो समझे ! माधव महाराज मुझे तुम्हें वैसा बुद्धि प्रकाश नहीं बनाना ! ये हमारे जैसे लोगों के बस का नहीं कि अमीरों की तरह, लड़कों की जब तक शादी न हो उन्हें अय्याशी करने के लिए कालेजों के अखाड़े में धूल फांकने और लोटपोट होने के लिए छोड़ दें। तुम्हारा बाप यानी मैं 6 जमात पास हूं। तुम 12 जमात पास हो गए यानी दुगने पढ़े-लिखे। मेरे बस का इतना ही समझो। तुम अपने लड़के को 24 जमात पढ़ा लेना, तब समझना कि बाप की बराबरी का हक अदा किया।

मां ने बीच में टांग अड़ाते हुए कहा - क्या बातें करते हो। लड़के की अभी शादी नहीं हुई और उससे औलाद को पढ़ाने की बात कर रहे हो। लड़के का मन है तो थोड़ा और पढ़ लेने दो !!

लेकिन पिता भी अपने ढंग का एक ही अड़ियल टट्टू था। मां की वकालत से बेटे को कुछ आशा बंधी थी। लेकिन पिता नहीं माना -

काम की बात करो। कल ही मेरे साथ चलना। मनेजर सॉब से बात करूंगा। वो मुझसे आजकल काफी हिले-मिले हैं। कोई कलरक-वलरक की जगह हुई तो उसी पर लगा देंगे। वरना ठाली बैठने से तो अच्छा है कोई भी काम कर लो। फैक्टरी में भर्ती चल रही है। भर्ती हो जाओ ! शाम को टाइप सीखो। इम्पलाएमंट एक्सचेंज में भी नाम दर्ज करा लो ! समझे !!

माधव का बाप बड़ा व्यावहारिक आदमी था। वह ज्ञान प्रकाश की तरह शेखचिल्ली नहीं था। वह चाहता था कि बेटा सरकारी दफ्तर में यथासमय कलर्क लग जाए या किसी सरकारी कार्पोरेशन या कंपनी वगैरह में या किसी बैंक में। लेकिन इसके लिए जरूरी था कि लड़का टाइप सीखे और साथ-साथ पढ़ाई भी करे, पत्राचार पाठ्यक्रम से। बैठे-ठाले की पढ़ाई को वह मानसिक अय्याशी समझता था विशेष रूप से कालेज की पढ़ाई को। उसने कालिज के लड़कों को देखा था धींगामस्ती करते हुए ! फिर बुद्धि प्रकाश की बेफिक्री की मिसाल उसके सामने थी। वह नहीं चाहता था कि कालेज में जाकर लड़का बिगड़े और बेफिक्र होकर मौज मस्ती मारे।

कलफदार कमीज़ और पतलून पहन कर आधुनिक ढंग से सभ्य-शिष्ट होने की नौटंकी करे और मां-बाप तक को बेवकूफ समझने लगे। वह कहा करता कि आजकल अमीरों के लड़के अक्सर हरामी पिल्ले होते हैं। निकम्मे सूअरों की तरह जगह-जगह मुंह मारते फिरते हैं और ये कालिज नाम के अखाड़े इन्हीं के अड्डे होते हैं। अपने बेटे माधव को वह उसी तरह का हरामी पिल्ला या निकम्मा सूअर नहीं बनाना चाहता था। यह उसका आदर्शवाद था अथवा यथार्थवाद, इसका निर्णय पाठक स्वयं करें।

माधव की एक न चली। मां की वकालत भी काम न आई। पिता ने एक जज की तरह अपना फैसला सुना दिया था। मां-बेटे मन मसोस कर रह गए। बहुत चिरौरी करने पर पिता ने एक महीने के लिए चैन की बंसी बजाने की मोहलत दे दी।

अगले ही महीने की सात तारीख से माधव पिता के साथ ही फैक्ट्री में जाने लगा। उसे आधा दिन मजदूर के रूप में और आधा दिन अकाउंट्स क्लर्क के रूप में काम करने का निर्देश मिला। मैनेजर ने यह आश्वासन भी दिया कि अभी कुछ महीनों तक उसे क्लर्क की तन्ख्वाह नहीं दी जाएगी; मजदूर के रूप में ही उसे भर्ती किया गया है। लेकिन अगर उसने मन लगाकर अच्छा काम किया तो उसे लगभग 6 या 7 महीने बाद या वर्ष के अन्त तक अकाउंट्स क्लर्क का फुलटाइम पद दे दिया जाएगा। माधव का पिता गद्‌गद् था। उसे तीन बेटियों का ब्याह करना है। माधव के काम करने से कुछ तो हाथ बटेगा।

माधव सुबह उठता। आठ बजे घर से फैक्टरी के लिए चल देता। शाम आठ बजे तक घर लौटता। दो घंटे आने-जाने में खर्च होते और दस घंटे फैक्ट्री की चारदीवारी के अन्दर बीतते। कभी-कभी कोई फील्ड ड्यूटी मिल जाती तो वह युनिवर्सिटी कैम्पस का एक चक्कर जरूर लगाता। रात को थक कर चूर हो जाता। टाइपिंग सीखने जाना भी नियमित न हो पाता।

लेकिन उसने कविताएं लिखना न छोड़ा। कभी-कभी कहानियों के क्षेत्र में भी हाथ मारने लगा।

इधर वह लिखता। उधर राधा के निर्देश पर माधव की मां सारी

कविताएं और कहानियां राधा के हवाले कर देती। एक दिन उसने मां से कहा—मेरी सब कविताएं और कहानियां वहां पहुंचा देती हो। और फिर वापस नहीं लातीं।

मां ने हंसकर कहा—तेरी कविताएं और कहानियां बड़े चाव से पढ़ती है। बड़ी तारीफ करती है। उन्हें संभालकर रखती है। चिन्ता न कर, खोएंगी नहीं!

एक दिन राधा के घर एक अंकल पधारे। ये राधा के पिता के पुराने सहपाठी थे और आजकल एक प्रकाशन व्यवसाय चलाते थे। इसी प्रकाशन व्यवसाय को चलाते-चलाते वे एक प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्था के मालिक हो गए थे। इसी संस्था से सुसंस्कृति नाम की एक कला-पत्रिका निकलती थी जिस पर हिंदी के बहुत से आलोचक-समीक्षक फिदा थे। ये अंकल महाशय इस पत्रिका के मुख्य सम्पादक भी थे।

राधा की साहित्यिक रुचि देखकर उन्होंने कांटा फेंका और एक मछली की तरह राधा इस कांटे में बिंधती चली गई। धीरे-धीरे माधव की कविताएं और कहानियां एक-एक करके राधा के नाम से 'सुसंस्कृति' में छपती चली गईं। दिल्ली के साहित्यिक जगत में राधा की धूम मच गई। कुछ महीनों बाद राधा के नाम से उन सारी कविताओं और कहानियों के दो संकलन छप गए। राधा उदीयमान चर्चित साहित्यकार हो गई थी। माधव बेचारे को कुछ पता न चला। कहां 'सुसंस्कृति' जैसी संभ्रात साहित्यिक और कलात्मक पत्रिका का माहोल और कहां फैक्ट्री की चार-दीवारी का माहौल! दिन निकलते ही वह वहां घुस कर बंद हो जाता और दिन छिपते ही घर की चारपाई में धंस जाता। माता-पिता निश्चिन्त थे कि बेटे का जीवन नियमित और व्यवस्थित ढंग से चल रहा है।

राधा के दोनों संकलनों का विमोचन समारोह हुआ। शिक्षा मंत्री जी द्वारा इस समारोह का उद्घाटन कराया गया। शिव प्रभाकर नाम के वयोवृद्ध साहित्यकार ने समारोह की अध्यक्षता की। श्री कृष्ण सेन्टर में विशिष्ट कला संगम के कलाकारों ने सरस्वती वंदना गाई और अन्य सांस्कृतिक प्रदर्शन किए। राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक नेताओं ने संकलनों पर हुई बहस में भाग लिया। तरुणों ने राधा को बधाई दी और वृद्धों ने

उसे आशीर्वाद दिए। अधिकांश उपस्थितों ने समवेत स्वर से कहा कि राधिका में एक महत्त्वपूर्ण साहित्यकार होने की संभावनाएं हैं।

हां यह बात तो हम बताना भूल ही गए कि अपने कलाकार भ्राता कैलाश चॉप की कलात्मक सलाह पर राधा ने अपना साहित्यिक नाम 'राधिका' रख लिया था।

उस समारोह के दौरान दो-एक आलोचकों ने दबी जुबान से यह कह दिया था कि इन रचनाओं में अभी कुछ कमियां भी हैं। इन्हें अभी और मांजने की जरूरत है। जरा देर से छपतीं तो कोई हर्ज न था। उन आलोचकों पर राधिका के प्रशंसकों की भीड़ पिल पड़ी। स्वयं राधिका और उसके भाई कैलाश चॉप ने उन आलोचकों की ओर इस अन्दाज से देखा था जैसे वे प्रबंधकों से पूछ रहे हों कि ये गैरजरूरी और गैर-सर्जनात्मक लोगों को बुलाया ही क्यों गया! कैलाश चॉप के इशारे पर एक नवयुवक वक्ता ने तो यहां तक कह दिया कि अगर ये आलोचक इतने ही बड़े तीस मारखां हैं तो आलोचना करना छोड़ें। कविताएं और कहानियां लिखकर दिखाएं। इन आलोचकों में एक ऐसे भी थे जिनके एकाध उपन्यास, कविता एवं कहानी-संग्रह छप चुके थे। वे आक्रोश के साथ तिलमलाए और प्रतिवाद तथा प्रतिरोध के तौर पर कुछ कहने के लिए बुदबुदाए पर राधिका के प्रशंसकों ने कैलाश चॉप के इशारे पर इन आलोचकों की बोलती बन्द कर दी।

अगले दिन रेडियो, टी वी पर तथा दैनिक समाचार-पत्रों में फ्लैश आए। राधिका, कैलाश चॉप और अंकल का चित्र छपा। शिक्षा मंत्री और अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के साथ। एक लम्बी रिपोर्टिंग भी थी।

माधव ने रेडियो पर ये खबर सुनी। उस दिन उसका एक मित्र ट्रांजिस्टर ले आया था। उसी पर सवेरे सवा आठ की खबरों में यह समाचार प्रसारित हुआ। राधिका की पुस्तकों पर राजनैतिक और साहित्यिक नेताओं की संक्षिप्त टिप्पणियां भी उसने समाचार-पत्रों में पढ़ीं। वह राधा के घर गया और उसे बधाई दी। राधा ने औपचारिक अभिवादन किया। कोई गर्मजोशी नहीं दिखाई। अजस्र गांभीर्य और गहन मौन की ठंडी संगमरमरी प्रतिमा-सी सुन्दर किन्तु कठोर। हल्की और फीकी मुस्कान के

साथ उसने माधव की बधाई स्वीकार कर ली। चाय के लिए सिर्फ पूछा। माधव ने सिर्फ एक गिलास पानी पिया क्योंकि यकायक उसका कंठ सूखने लगा था और एक गहरी प्यास का अनुभव करते हुए उसने बुदबुदाते होठों से एक गिलास पानी मांगा था। पानी पीकर उसने गिलास खुद मांजा और यथास्थान रख दिया। उसके बाद वह चला आया।

जब वह घर की ओर लौट रहा था तो उसका माथा ठनका। उसके मन में पहले भी कई बार यह विचार आया था कि वह राधा से अपनी कविताओं और कहानियों को वापस मंगाए। लेकिन उसके मन के किसी गहरे कोने में राधा के प्रति एक स्निग्धता और रागात्मक अनुभूति थी। इधर राधा और उसके बीच संवाद या सम्प्रेषण का कोई माध्यम न रह गया था सिवाए उक्त कविताओं और कहानियों के। उसे डर था कि कहानियां और कविताएं वापस ले लेने से एक तो राधा मन ही मन नाराज हो सकती है दूसरी ओर दोनों के बीच संवाद सम्प्रेषण के इसी एकमात्र माध्यम के भी न रहने से संवाद-हीनता और सम्प्रेषण-हीनता हो जाएगी। वह अपने और राधा के बीच कोई न कोई तार बनाए रखना चाहता था। इस मनःस्थिति के बावजूद उसने अपनी मां से दो-एक बार कहा भी तो मां ने या तो भूलने का बहाना किया या टाल दिया या फिर यह कह कर झिड़क दिया कि—

तू क्या करेगा उस कागजी माथा पच्ची का। कोई हीरे जवाहरात हैं क्या ? गुड्डिया के पास पड़े हैं, पड़े रहने दे ! जब मन होगा, लौटा देगी। तुझे क्या उनका अचार डालना है ?

लेकिन घर लौटते-लौटते जैसे उसकी आंखें खुलती जा रही थीं। राधा के प्रति सारी स्निग्धता जैसे काफूर होने लगी हो। लेकिन वह करे भी तो क्या ? साहित्यिक जगत में उसे पूछेगा कौन ? कौम मानेगा कि वे कविताएं-कहानियां माधव की हैं, राधा की नहीं हैं।

एक दिन माधव के पिता ने उसकी मां से पूछा—

—क्या माधव ने टाइप सीखना छोड़ दिया ?

—हां छोड़ ही दिया समझो ! पत्नी ने उत्तर दिया।

—क्यों छोड़ दिया ?

—कहता है थक जाता हूं। टाइप सीखने के लिए हिम्मत नहीं रहती।

—इसके मिजाज तो शहजादों जैसे हैं, अरे टाइप नहीं सीखेगा तो सरकारी क्लर्क कैसे बनेगा ?

—सरकारी नौकर बनाना था तो फैक्टरी में क्यों पेला ? पत्नी ने चिढ़ कर पूछा।

—मुझ पर ही रहम नहीं आया। बेटे पर कितनी दया आती है। अरे मेरी मां मर गई तो क्या मैं भी कभी किसी का बेटा था। तीस साल फैक्ट्री में नौकरी की। मेरा तो किसी ने ख्याल न किया। कभी तेरे पिता ने, तेरी मां ने या तूने नहीं कहा कि कुछ दिन बैठकर खाओ ! अनाज-पानी का इन्तजाम हम कर देंगे।

पति ने कटाक्ष, गुस्से और आत्मकरुणा से भरे मिश्रित लहजे में यह कहा तो पत्नी भी छिनक पड़ी—

मेरे माता-पिता को बीच में मत लाओ। फिर तुम्हारा जमाना और था। माधव का और। सस्ता वक्त था। दो जून ठीक से खाने को तो मिल जाता था। तब की खूराक आज तक हड्डियों को मजबूत बनाए है। आजकल मिलता ही क्या है ? क्या खाकर मेरा बच्चा दस घन्टे तक फैक्टरी में पिलता रहे ?

कहते-कहते माधव की मां की आंखें भर आईं। पति फिर नहीं बोले और चुप रह गए।

माधव ने राधा से मिलने की ठानी। वह हिन्दू कॉलेज से हिन्दी एम. ए. प्रीवियस में दाखिला ले चुकी थी। फैक्ट्री से किसी काम के बहाने वह बाहर निकला और यूनिवर्सिटी कैम्पस की ओर हो लिया।

अपने ही हम-उमर लड़कों को वहां लड़कियों के साथ हंसते, खिलखिलाते और कुलांचे भरते देख कर उसके हृदय में हूक-सी उठी ! यह देखकर उसका मन रो दिया कि उसकी किस्मत में कॉलिजिएट बनना और ग्रैजुएट होना नहीं लिखा था।

उसे यहां आकर फिर वैसी ही गहरी प्यास का अनुभव हुआ। लगा जैसे कि उसकी जीभ सूख कर गिर पड़ेगी। कंठ और हलक जैसे सूखकर

ठठरी हो जाएंगे। युनिवर्सिटी कैम्पस के एक पार्क में एक पाइप से सिंचाई-जल निकल रहा था। उसी पानी को पीकर वह अपनी प्यास बुझाने लगा। किसी ने उसे टोका भी कि यह पीने योग्य नहीं है; लेकिन प्यास इतनी तेज और इतनी गहरी थी कि वह उसे तत्काल बुझाना चाहता था।

हिन्दू कॉलेज के भीतर घुसते ही राधा के दर्शन हो गए। वह झुंड के झुंड लड़कों के साथ अपनी सहेलियों का जमघट लिए बतिया रही थी। लेखिका होने की विशिष्टता का बोध उसके रोम-रोम से टपक रहा था।

राधा कॉलेज से बाहर निकलने को थी कि दोनों की नजरें मिल गईं। माधव को इस तरह सामने पाकर वह चौंक उठी। अपनी सभी सहेलियों और सहपाठी लड़कों से 'टा टा' करती हुई वह माधव से मुखातिव हुई और उसके साथ-साथ चलने लगी। सहज होते उसे देर न लगी। माधव और वह दोनों बस-स्टाप की ओर चलते रहे। चुपचाप। सहसा माधव ने ही इस मौनाचार को भंग किया—

—मैं तुम्हीं से मिलने आया था। माधव के स्वर में अशांति और उत्तेजना थी।

—मैं समझ गई हूं। उसने शांत भाव से उत्तर दिया।

—मेरी कविताएं और कहानियां कब वापस होंगी ?

—वे तो छप भी गईं। कह कर वह मुस्कराई !

—वे सभी रचनाएं तुमने अपने नाम से छपवा लीं? माधव के स्वर में आक्रोश था।

एक दो पल के लिए राधा सकपका गई। फिर दाएं-बाएं देखककर आंखों में प्यार जताती हुई, सीने का आंचल परे झटकाती हुई और अंत में उसके कंधे पर उंगलियां छुआती हुई बोली—

भूल गए वो स्कूल वाली बात ? तुमने कहा था कि तुम्हारी रचनाएं मुझी को समर्पित हैं।

—हां याद है, कहा था ! माधव ने हड़वड़ी के साथ उत्तर दिया।

—तब मैंने कौन-सा गुनाह कर दिया। जो चीज मुझे समर्पित है उसको मैंने अपना मान लिया !

माधव के पास इसका कोई जवाब नहीं था। वह पानी-पानी हो गया लेकिन उसकी आंखें भर आईं! वह कहीं गहरे खो गया जैसे आत्मस्थ हो गया हो।

तभी राधा के स्वर ने उसकी समाधि भंग कर दी।

—अच्छा मैं चली! मेरी बस आ गई!!

वास्तव में बस आ गई थी और राधा झटपट उसमें चढ़ गई थी।

बेचारा माधव टापता ही रह गया।

माता गुरप्यारी

वर्ष 1984 की अप्रैल का महीना और शाम का वक्त है। खिड़की के साथ पलंग बिछाकर कुमार उस पर बैठ गया है और बाहर सड़क की ओर देखने लगा है। सड़क ज्यादा लम्बी नहीं है; एक किलोमीटर दूरी तय करने के बाद एक दूसरी सड़क में, जो उसे काटती है, विलीन हो गई है। सड़क के पार एक जंगल है जिसे स्थानीय विकास प्राधिकरण ने एक पार्क में रूपांतरित कर दिया है। पलंग पर बैठकर वह खिड़की-भर आकाश को देख रहा है। कभी-कभी सामने जंगल-नुमा पार्क में ऊंचे-ऊंचे सफेदे के वृक्षों की ओर भी उसकी निगाह चली जाती है। सफेदे के वृक्ष हवा के नशे के साथ झूम रहे हैं; उसे लगता है कि वे सिर हिला-हिला कर उसे सांत्वना दे रहे हैं। लेकिन सांत्वना मिलती नहीं। अधीरता का आलम है। रह-रह कर याद आती है कि मां नहीं रही। होती तो वह भी इस समय उसके पास बैठी होती। उसी की तरह अपने नथुनों में हवा भर रही होती, उसी की तरह गट्-गट् पानी का गिलास पी रही होती अथवा उसी की तरह आकाश ताक रही होती।

कहने की जरूरत नहीं कि आदमी आकाश की ओर कब ताकता है!

माता गुरप्यारी नहीं रही। अपने पिता यानी उसके नाना दो वर्ष पहले चल बसे। नाना सिख थे; 104 साल के होकर सिधारे। लेकिन उनकी बेटी रामप्यारी सिर्फ 65 साल की उम्र पा कर चल बसी। यह नाम सिख पिता का ही दिया हुआ था लेकिन प्यार में वे उसे गुरप्यारी

ही कहते थे। नाना ने मरने से कुछ दिन पहले कुमार को एक पत्र लिखा था। वह उस पत्र को ढूंढ़ने लगा है। पत्र मिल गया है। अब वह उसे एक बार फिर पढ़ने लगा है :

"प्यारे कुमार जी और बेटी गुरप्यारी !

आप सब खुश रहो !

मैं अब एक वैद्य का इलाज करा रहा हूं। पैरों की सोजस अब बिल्कुल उतर गई है। सिरफ टट्टी ही दो बार आती है। मैं चार या पांच दिन में ठीक हो जाऊंगा। आपने, बेटा जो दिल्ली में मेरी सेवा की मैं उसको मरते वक्त तक नहीं भूल सकता। ये सब मेरी प्यारी बेटी गुरप्यारी के त्याग और तपस्या का प्रताप है। जिस दिन पैदा हुई मैंने उसी दिन गुरू गोबिन्द सिंह का जाप करके उसे तपस्याव्रती बना दिया.."

आगे वह पढ़ नहीं पाता। आंखों में जल इस कदर भर आया है कि अक्षर धुंधले हो गए हैं। आगे कैसे पढ़े। वह पत्र को संभालकर रख देता है। मां का सारा इतिहास एक न्यूजरील की तरह उसकी आंखों के सामने घूम जाता है।

इस पत्र के कुछ ही दिनों बाद उसके नाना की मृत्यु का समाचार आ गया था। माता गुरप्यारी अपनी रुग्ण वृद्धावस्था में भी बच्चों की तरह रोई थी। कई दिनों तक वह उसी तरह रो पड़ती थीं। अपने 104 वर्षीय पिता तूहीसिंह की मृत्यु की याद आते ही वह ऐसे रोती थी जैसे कोई बालिका अपने पिता की अकाल मत्यु पर रोती है। तीस साल पहले वह विधवा हो गई थी। उसके हिंदू पति भजन लाल की जब मृत्यु हुई वह पेंतीस साल की हृष्ट-पुष्ट जवान औरत थी। श्री भजनलाल की पूर्व पत्नी की मृत्यु पर वह दूसरी पत्नी के रूप में उनके यहां आई। पहली से तीन लड़के और एक लड़की। दूसरी यानी माता गुरप्यारी के पांच लड़के और एक लड़की हुई। जब श्री भजनलाल स्वर्ग सिधारे तो माता गुरप्यारी के बच्चों की उम्र 15 साल, 13 साल, 8 साल, 6 साल (लड़की), 3 साल और माइनस 6 महीने थी। सबसे छोटा पुनीत पेट में था। 6 महीने बाद वह पैदा हुआ। इसीलिए कहा कि उस समय उसकी उम्र माइनस 6 महीने रही होगी। उसके बाद यानी विधवा होने के बाद माता गुरप्यारी ने अपने

बच्चों को कैसे पाल-पोस कर बड़ा किया, इसका वर्णन करना एक बड़े ही दारुण और कारुणिक प्रसंगों के सिलसिले को छेड़ देना है। लेकिन इतना तो बताना पड़ेगा ही कि छः जमात पास माता गुरप्यारी ने तीस साल की वैधव्यावधि में अपने सभी बच्चों को कम से कम बी. ए. तक पढ़ाया। जो आगे पढ़ना चाहते थे उन्हें आगे तक पढ़ाया। मसलन एक को टेक्सटाइल का चीफ इन्जीनियर बनाया, कुमार ने एम. ए. एल. एल. बी. किया। दो ने बी. एस. सी. की। लड़की ने एम. ए. एम. लिट किया। सबसे छोटे पुनीत ने फिजिक्स में एम. एस. सी. की, और ढाई हजार रुपए मासिक की नौकरी उसे मिली। पुनीत यानी वही जो पिता के मरने पर मां के पेट में था और पिता की आखिरी निशानी के रूप में 6 महीने बाद जिसका जन्म हुआ। माता गुरप्यारी ने सभी बच्चों को गृहस्थ बनाया और अपने बच्चों के बच्चों को भी प्यार दिया। लेकिन उसका अपना जीवन त्याग, तपस्या, करुणा और बलिदान की कहानी बनकर खत्म हो गया।

कुमार को यही बात सालती है। इसीलिए उसे मां की याद बार-बार आती है। क्योंकि इस त्याग, तपस्या, करुणा और बलिदान की कहानी में उसका योगदान भी कम नहीं रहा। उसने कर्ज लेकर अपनी और फिर बहन की शादी की। वह कर्जा किसी न किसी रूप में आज भी काले साए की तरह उसके पीछे लगा है। उसने 17 साल की उम्र से कमाना शुरू किया और पूरे बीस साल तक वह अपनी तनख्वाह मां के हाथ में देता रहा। शादी के बाद पत्नी को भी उसने उसी लाइन पर चलते रहने के लिए मजबूर किया। लगभग दस साल तक उसकी पत्नी भी उसी की तरह मां के हाथ में हर मास अपना वेतन सौंपती रही।

यही बातें उसे आज याद आ रही हैं कि उसने एक लंबे अरसे तक अपनी कमाई का सर्वस्व मां को दिया था। मां ने उसका और अपना सर्वस्व अपने दूसरे बच्चों पर खपा दिया। लाख समझाने बुझाने के बावजूद अपनी ओर ध्यान नहीं दिया। पहले अपने रोग को छिपाती और इस प्रकार बढ़ाती रही और जब रोग सहने की सीमा के बाहर होने लगा तो हाय-हाय करती और कराहती हुई इस दुनिया से चली गई।

माता गुरप्यारी के मरने से लगभग नौ महीने पहले उसने एक दिन

क्षुब्ध होकर मां से कहा था—

अब तुम रात-दिन हाय-हाय करती हो। मैं कितना समझाता था। तब तुमने मेरीं एक न सुनी। कभी मेरी बात नहीं मानी।

माता गुरप्यारी कहती– मैंने क्या कसूर किया अगर अपने बच्चों को पाला, पाल-पोस कर उन्हें काबिल बनाया।

उसने तीखा होकर पूछा था—उनकी काब्लियत तुम्हारे क्या क म आई ? इतना भी नहीं कि प्राइवेट नर्सिंग होम में ले जाएं। ढंग से तुम्हारा इलाज कराए !

माता गुरप्यारी कहती—क्या फायदा है, मेरी बिमारी जाने वाली नहीं है, सौ रुपए महीना दवाई आती है, यही क्या कम है ?

वह चिढ़कर कहता—हां, कम है।

माता गुरप्यारी दुःखी होकर पूछती—तो तू गुस्सा क्यों करता है। मेरा कसूर क्या है ?

वह उत्तर देता—तुमने मेरे अलावा अपने सभी बच्चों को स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित बनाया। पढ़ाई-लिखाई और कैरियर के नाम पर उन्हें गैर-जिम्मेदार बनाया। वे खुद अपने पर खर्चना जानते हैं। अपनी बीवियों पर और अपने बच्चों पर रईसों की तरह खर्च करते हैं। लेकिन, तुम्हारे इलाज और स्वास्थ्य के लिए सौ रुपए से अधिक खर्च करते उन्हें फांसी लगती है ? और दो तो ऐसे हैं जो सौ रुपया भी नहीं देते। पचास रुपए महीना देते भी उनके और उनकी बीवियों के गले में फांस चुभ जाती है।

खीझकर मां कहती—तू न खुद दुःखी रहाकर, न मुझे दुःखी किया कर। ऐसी बातें करके मुझे क्यों परेशान करता रहता है।

वह कहता—मुझे तुम्हारी हालत देखकर तुम पर रहम और उन पर गुस्सा आता है। मैंने अपनी और अपनी बीबी की सारी पूंजी, अपने विवाह का सामान, अपनी और बीबी की तनख्वाह बीस वर्षों तक संयुक्त परिवार में झौंक दी। तुम उस परिवार की मां थीं। तुम हमसे लेती रहीं, उन पर लुटाती रहीं। आज मेरे पास कुछ होता तो मैं तुम पर लगा पाता। तुम्हें अधिक आराम दे सकता। तुम्हारा अच्छे ढंग से इलाज कराता। लेकिन मेरी आर्थिक, शारीरिक और मानसिक क्षमताओं का 60 प्रतिशत अंश छोटे

बहन-भाइयों पर सर्फ हो गया। फिर मेरे दो लड़कियां, वे जवानी की देहरी पर पांव रख रहीं हैं। मुझे उनके भविष्य के लिए भी सोचना है। लड़का अभी बहुत छोटा है। अब अपनी बची-खुची क्षमताओं में से मैं तुम पर लगाऊं या अपने बच्चों पर···मेरी कुछ समझ नहीं आता···मैं पागल हो जाऊंगा। तुम नहीं जानतीं मेरे सिर पर एक कच्चे धागे में बंधी तलवार हरदम लटकती रहती है···मेरी नौकरी कभी भी खत्म की जा सकती है। मेरा लेखन ही मेरी नौकरी के लिए बाधा बन गया है।

माता गुरदेवी कहती—तो बेटा तू ऐसा मत लिख जिससे तेरे दफ्तर वाले नाराज होते हों और मेरी हाय-हाय सुनकर तू दुःखी मत हुआ कर।

उसे फिर गुस्सा आ जाता। जोर देकर कहता —यह कैसे हो सकता है। मुझसे तुम्हारी हाय-हाय नहीं सुनी जाती। और फिर तुम्हारी हाय-हाय सुनकर मुझे उन भाइयों पर गुस्सा आता है जो अपनी मोटी-मोटी तन्खवाहों की डींग तो मारते हैं लेकिन तुम्हारे लिए एक होल-टाइम नर्स की व्यवस्था नहीं कर सकते। तुम्हें किसी प्राइवेट नर्सिंग होम में नहीं ले जा सकते। मेरे पास, 25 साल कमाने के बाद भी एक वर्ग गज जमीन नहीं है, घर कहने को झोंपड़ी तक नहीं और वे सुना है अभी से जमीन खरीद रहे हैं, सैल्फ फाइनेंसिंग फ्लैट की तैयारियां कर रहे हैं जबकि उन्हें नौकरी करते अभी चार बरस भी नहीं हुए। वे क्यों नहीं देते अपना वेतन तुम्हारे हाथों में। तुम मुझे छुट्टी दे दो, मैं उनसे एक बार जमकर लड़ लूं। और अगर वे तब भी रिअलाइज न करें, उन्हें अहसास न हो तो उनके थोबड़ों पर कालस मल दूं।

गुरप्यारी माता रो पड़ती और कहती—मुझे जहर दे दे।

कुमार चुप हो जाता। इसके बाद कहने को रह ही क्या जाता है। वह उठता। मां को दूध पिलाता। फिर दवाई देता। फिर खाना खिलाता। खुद खाना खाता और दफ्तर के लिए निकल जाता। शाम को दफ्तर से लौटकर वह मां की खुशामद करता। मां उसके स्वभाव को जानती थी। उसकी कथनी और करनी दोनों को पहचानती थी। इसलिए ज्यादा देर तक खुशामद नहीं कराती थी और रूठना छोड़कर जल्दी ही मान जाती थी।

इसी तरह दिन बीत रहे थे। मां का रोग भी कुछ शांत हो गया था। वह सहारा लेकर थोड़ा चलने-फिरने लगी थी। तभी एक दिन जब वह

दफ्तर गया था, उसकी अनुपस्थिति में पुनीत उसे अपने यहां ले गया। उसे कुछ-कुछ पता चल गया था कि मां पुनीत का घर, जो उसने पहली बार एक किराए का मकान लेकर बसाया था, देखने जाएगी। पुनीत के नवजात पुत्र को देखने की लालसा मां के अन्दर बढ़ती जा रही थी। इस बीच उसकी नानी (माता गुरप्यारी की 80 वर्षीय मां) उसे देखने आई थी और चार दिन के लिए रुकी थी। नानी ने अपना रुग्ण बेटी की सेवा जी-जान से की थी और बेटी को समझाया था कि वह कुमार का घर छोड़कर न जाए। स्वयं कुमार जाने के खिलाफ था। उसने मां की सुविधा को ध्यान में रखते हुए एक खुला, हवादार नया मकान किराए पर लिया था। इस मकान के ड्राइंगरूम में उसने मां का पलंग उस जगह लगाया था जहां सवेरे-सवेरे धूप फैल जाती थी। जब धूप खुलकर आ जाती तो मां पुकारती— कुमार, दरवाजा बन्द कर दे, धूप तेज हो गई है।

वह उत्तर में कहता—"मां, धूप आपके लिए लाभकारी है···इससे आपकी गांठों की जकड़नें कम होंगी। बदन को सेक मिलेगा।"

वर्ष 83' के सितम्बर के अन्तिम दिनों की ही तो यह बात है। बच्चे स्कूल चले जाते थे सवेरे; पत्नी पढ़ाने जाती थी और वे पढ़ने। घर में अकेले वे दोनों मां-बेटे ही तो रह जाते थे। फिर नौ बजते ही वह दफ्तर के लिए चल देता था। दोपहर को पत्नी और बच्चे लौट आते थे। मां प्रतिवाद करती—बेटा, मेरी आंखें कमजोर हैं उनमें चौंधा लगता है।

पिछले वर्ष माता गुरप्यारी की आंख का ऑप्रेशन हुआ था। वह जिद करता—नहीं धूप आने दो। दीवार की तरफ मुंह करके आंख मींच कर लेट जाओ। फिर चौंधा नहीं लगेगा। धूप से बदन को सेक मिलेगा। और बिस्तर में सीलन नहीं रहेगी। दिनभर लेटने से शरीर का पसीना कपड़ों और बिस्तर में सीलन करता है। धूप से सब ठीक रहता है। अच्छा बेटा! 'कहकर मां करवट बदलती। उसके मुंह से कराहट-भर हाय निकलती और वह आंखें मूंदकर लेट जाती।

अचानक पुनीत की पत्नी, जो विवाह के बाद दिल्ली में ट्रांसफर न होने के कारण कुछ दिनों के लिए ही पति के साथ रह पाई थी, अब ट्रांसफर हो कर दिल्ली आ रही थी। पुनीत ने अब एक मकान किराए पर

ले लिया और मां को ले गया। कुमार टापता रह गया।

मां का हृदय भी चाव से भरा था। वह अपने सबसे छोटे लाड़ले बेटे का घर बसाएगी। उसके बच्चे को प्यार करेगी। मां वहां लगभग पांच महीने भर भी न रह पाई। जब तक पुनीत की बीवी नहीं आई तब तक तो पुनीत ने मां की खूब सेवा की। लेकिन जो मकान उसने किराए पर लिया वह बहुत तंग था। धूप और आकाश का वहां अभाव था।

पुनीत मसरूफ हो गया था मकान की पेंटिंग कराने में, ड्राइंग रूम सजाने में। उस छोटे से 'कबूतर खाने' को स्टार-सूट बनाने की उसने कमर-तोड़ कोशिश की। इसी मकान को मां ने ही शायद पहली बार 'कबूतरखाना' कह कर पुकारा था। पुनीत मां से कहा करता था कि उसका वेतन बड़े भाइयों से अधिक है। मां सुनकर खुश होती क्योंकि वह सबसे छोटा था और बड़ी तपस्या, भारी संकट, विकट संघर्ष और कठोर बाधाओं के बावजूद ही वह उसे इस योग्य बना सकी थी। लेकिन मां हैरान थी कि साढ़े तीन हज़ार रुपए की मासिक आमदनी होते हुए भी उसने यह कबूतर खाना किराए पर लिया जिसमें धूप कभी झांकती भी न थी। गुसलखाने और टायलेट में आदमी आराम से बैठ भी न सकता था। बड़ी भाभी ने इसी मकान को कालकोठरी कहा था। एक कमरा पुनीत और उसके दोस्तों का ड्राइगंरूम और दूसरा कमरा पुनीत का बैडरूम जिसमें डबलबैड किसी तरह फंसा दिया गया था और उसपर पुनीत अपनी बीवी-बच्चे के साथ सोता और आराम करता था। इसमें एक ड्रेसिंग टेबुल भी थी।

अब मां के लिए दोनों कमरों के बीच का एक तंग बरामदा बचा था। वहां भी डायनिंग टेबुल फंसानी थी। डायनिंग टेबुल से सटा कर मां की खाट डाल दी गई। इस सब के लिए ज़रूरी था कि बाल्कानी का दरवाजा बंद रखा जाए। ड्राइंग रूम में कार्पेट और सोफा सेट पसर गए थे। कुछ स्थान बाकी था। लेकिन उस स्थान का रिजर्वेशन पहले ही हो गया था क्योंकि वहां कलर टी वी और फ्रिज के लिए सपने सजाए जा रहे थे।

पिता की मृत्यु के बाद उनकी आखिरी निशानी के रूप में इसी बेटे के जन्म पर प्रसूति-गृह में, हाथ जोड़ते हुए आंखें मूंद कर भगवान से उसने इतनी भीख मांगी थी—

"हे परम पिता परमात्मा, तूने इस बच्चे के पिता को इसके जन्म से पहले ही छीन लिया ! अब दया करना ! इसकी मां को इतनी उमर जरूर बख्शना कि यह बड़ा हो कर अपने पांव पर खड़ा हो जाए। इसके नौकरी लगने और विवाहित होने तक मैं जीवित रहूं। हे वाहे गुरु इतनी कृपा करना।"

भगवान ने या 'वाहे गुरु' ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली थी। पुनीत बड़ा हुआ, अफसर हो गया, उसकी शादी भी हो गई और एक बच्चा भी। और मां ने अपनी आंखों से अपने आखिरी सपने को साकार होते देख लिया।

लेकिन उसी बेटे के घर में भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' कहानी जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी।

जहां माता गुरप्यारी की चारपाई लगी थी, वहां उस तंग बारामदा-नुमा स्पेस का एक दरवाजा बालकानी की ओर था जो डाइनिंग टेबुल रखने के कारण लगभग बन्द हो गया था। यानी बालकानी की ओर का उसका आकाश भी छिन गया था। उसी स्पेस से सटा ड्राइंगरूम था। किचन और बैडरूम भी दूसरी तरफों से सटे थे। इस स्पेस को पुनीत तीसरा कमरा कहता था और इसी अर्थ में वह अपने दो कमरे वाले उस मकान को तीन कमरे वाला मकान बताता था। डायनिंग टेबुल की कुर्सियां भी वहीं चार-पाई से सटा कर रखी गई थीं। मां की धूप, हवा और आकाश छिन गए थे।

कुमार एक बार, जब मां से मिलने गया था तो उसने इस ओर संकेत करते हुए कहा था--

मां की खाट ड्राइंगरूम में डाल दो !

यहां क्या हर्ज है ? पुनीत ने पूछा था।

यहां, तुम्हारी बालकानी का दरवाजा बंद रहता है। इधर कुछ काफी कन्जैशन है कह कर कुमार ने उसे टटोलना चाहा था।

पुनीत ने हाथ नचा कर कहा था—कोई कन्जैशन नहीं है। सब खुला-खुला है।

वह चुप हो गया था। इसी बीच पुनीत की बीवी ने दखल देते हुए कहा था—हां दिक्कत तो है, जब कपड़े सुखाने होते हैं तो बालकानी में

जाना पड़ता है। तब उसने पुनीत की ओर मुखातिब हो कर कहा था कि डायनिंग टेबुल ड्राइंगरूंग में रख लो ! पुनित ने इस बात का उत्तर देने की कोई जरूरत नहीं समझी थी या शायद बड़बड़ाया था कि फिजूल सा टापिक है। कन्जैशन है ही नहीं। उसकी बीवी ने कहा था— ड्राइंगरूम में जहां आप डार्थनिंग टेबल रखने को कहते हैं ना, वहां फ्रिज रखा जाएगा। अभी अगले हफ्ते आ रहा है।

मां उस दौरान दर्द से कभी-कभी कराह उठती थी।

धूप, ताजी हवा और खुले आकाश से रहित उस माहोल में चल-फिर न सकने के कारण गठिया-ग्रस्त मां का जर्जर शरीर जाम होता गया। चलते-फिरने में माता गुरप्यारी को वैसे ही कष्ट होता था। लेकिन डॉक्टर की हिदायत थी कि इन्हें जबरदस्ती चलना-फिरना है। इसीलिए उनके लिए सभी बेटों ने मिलकर एक अलमीनियम का वाकिंग-एड खरीद दिया था। मां उसके सहारे उसे उठा-उठा कर चलती थी। लेकिन उसकी सहायता से चलने के लिए कम से कम डेढ़ वर्गफुट की जगह और थोड़ा रास्ता अपेक्षित था। लेकिन जगह थी ही नहीं। वाकिंग-एड उठा कर एक ओर कहीं रख दिया गया था। उसके बिना मां ठीक से खड़ी भी नहीं हो सकती थी चलना तो दूर।

कुमार ने इशारे से पुनीत को समझाने की कोशिश में कहा था—"मां को मैं ले जाऊं?"

जैसे चिढ़ कर पुनीत ने कहा था—"यहां इन्हें क्या दिक्कत है?"

मां की आंखों में झांक कर कुमार ने जानना चाहा था। मां को उसका पश्चिम विहार वाला किराए पर लिया गया एम. आइ. जी फ्लैट पसंद था। वहां वह खुलकर चल फिर सकती थी। उसके बच्चों के साथ बात-चीत में उसका समय भी कट जाता था। अक्तूबर तक वहीं तो थी। खुद सीढ़ियां उतर कर आई थी। उसने खुद खड़े हो कर फोटो भी खिचवाई थी। लेकिन बड़े बेटे ने छोटे बहन-भाइयों की परवरिश की थी। उससे सेवाएं वह काफी करा चुकी थी। अब वह कुछ दिन जमकर अपने सबसे छोटे सबसे लाड़ले बेटे के पास रहना चाहती थी। अपनी नई बहू और सद्य-जात पोते के चाव में वह चली आई थी मन में बड़ी मुरादें ले कर। कुमार

की मर्जी के खिलाफ उसका घर छोड़ कर इस तंग मकान में चली आई थी। उसे क्या मालुम था कि यहां…।

इसी तरह के दमघोटू परिवेश में, धूप, हवा और आकाश से विछिन्न होकर, मानसिक आघात-प्रतिघात झेलती हुई गठिया के रोग-ग्रस्त माता गुरप्यारी के शरीर पर लकवे का आक्रमण हुआ। उसे इसका अहसास तब हुआ जब वह टायलेट में धम्म से गिरी। कमर, गर्दन और सिर में चोटें लगी। हस्पतालों में यथासमय प्रवेश न मिला। सफदरजंग में डॉक्टरों की हड़ताल जोरों पर थी। और हस्पतालों के डॉक्टर भी उनकी सहानुभूति में काम पर नहीं आ रहे थे। जो आ रहे थे वे भी अनमयस्क भाव से रोगियों को देखते थे। पुनीत मां के गिरने और चोट लगने के तथ्य को भाइयों से छिपाता रहा। उसने बराबर इलाज कराने में कोताही नहीं की लेकिन चोट को नजरन्दाज किया। वरना शायद हैड-इन्जरी का सीरियस केस समझ कर डॉक्टर यथासमय एडमिट भी कर लेते।

मरने से लगभग दस दिन पहले माता गुरप्यारी को हस्पताल में भर्ती किया गया।

भर्ती होने से दो तीन दिन पूर्व वह मां से मिलने गया था तो मां ने दोनों हाथ फैलाकर कहा—"बेटा मुझे बचा ले, भाई! मुझे बचा ले!! मुझे अपने यहां ले चल!"

वह ले जाना चाहता था लेकिन पुनीत ने यह कहकर कि—"मेडीकल इन्स्टीच्यूट में एक डॉक्टर से अपाइंटमेंट ले रखा हैं। वहां इन्हें दिखाना है।" उस प्रसंग को रफा-दफा कर दिया था।

गुरप्यारी माता प्रकृति की खुली गोद में पैदा हुई थी। बागों की खट्टी-मिट्ठी अम्बियां खा-खाकर जवान हुई थी। जब वह साल भर की थी उसे एक गीदड़ उठाकर ले गया था। फिर दूर मिली पड़ी थी। एक बार ऊंचे आम के पेड़ से नीचे गिरी। सन् सैंतालीस के आसपास वह गर्भावस्था में छत से गिरी। एक बार, जब वह विधवा होकर, अपने बेटों के लिए खाना बनाने के लिए अंगीठी सुलगाने लगी तो एक उसे एक ताकतवर मरखनी गाय ने पीछे से सींगों पर उठा लिया और काफी दूर पर पटक दिया था।

शायद अब आखिरी समय में पुरानी सभी चोटें उभर आई थीं!

माता गुरप्यारी कभी एक तन्दरुस्त और खूबसूरत औरत थी। उसके चेहरे पर कक सूरज तमतमाता था। उसका रंग सुबह की धूप की तरह गोरा था। उसकी कमर मलाई की तरह मुलायम थी। दोनों हाथ जैसे गुलाबी कमल के फूल की तरह। बांहें और पिंडलियां मांसल। गुदास बदन की नीमबाज आंखों वाली! 35 साल की उमर में विधवा हुई दूसरी बार। पहली बार तो गौने के समय ही विधवा हो गई थी। बगैर किसी जमीन-जायदाद के विधवा होकर भी उसने अपने सभी बच्चों को फूलों की तरह रखा। कभी मैला नहीं होने दिया। और खुद भी हमेशा धुली-धुली! गाती तो लगता था कि दर्द का सैलाब ले अएागी जिसमें जीवन की सारी विलास-क्रीड़ाएं बह जाएंगी।

विलास जैसे उसके जीवन में था ही नहीं। एक के बाद एक संघर्ष, दुधर्ष वर्ष दर वर्ष संघर्ष। वाधाओं का एक सिलसिला। फिर भी सब बच्चों को पढ़ाया।

यहां तक लड़की को हरयाणा के सरकारी कॉलेज में लेक्चरार कराकर ही दम लिया। लड़की ने वैवाहित जीवन की समस्याओं के कारण वह नौकरी छोड़ दी और दिल्ली के एक पब्लिक स्कूल में अध्यापन करने लगी। गुरप्यारी माता अगर और दिन जीती तो अपने पोते-पोतियों को भी योग्य बनाने के लिए कृत संकल्प होकर जुट जाती। आठ बेटों और दो बेटियों की मां थी वह और अगर पोते-पोतियों को भी इस सूची में शामिल किया जाए तो कहना होगा कि पचास बच्चों की मां थी वह!

एक हफ्ते तक माता गुरप्यारी को बचाने के लिए उसके बच्चे लगातार कोशिशें करते रहे। हस्पताल के बरामदे में सो जाते। रात को डॉक्टर आते। भीड़-सी देखकर वहां से निकाल देते तो वे हस्पताल के परिसर में सो जाते। पुनीत ने भी सेवा में कोई कसर न छोड़ी। वह स्वयं भी जुटा रहा। हस्पताली कैन्टीन में सभी खाते। हस्पताली नलकों का पानी पीते और मां के लिए दुआएं करते। लेकिन पंछी पिंजरे से निकल चुका था। सिर्फ रह गए थे कुछ टूटे पंख! गुरप्यारी माता अपने बेटी-बेटों को, प्यार से निहारती। फिर आंखें बन्द कर लेती। सारा शरीर लगभग निर्जीव होता गया था। ऐसा लगता था जैसे प्राण सिर्फ आंखों में और होठों में आकर टिक

गए थे। बेटे दवाई पिलाते, अंगूर खिलाते, वह होंठ खोल देती। अंगूर चिकलती और गूदा होठों से बाहर ले आती। उसके बेटी-बेटे उस गूदे को हाथों में लेकर मुंह पोंछ देते। वे मां के गालों पर हाथ फेरते। हस्पताल के दूसरे मरीज उधर देखते और आपस में कानाफूसी करते कि देखो एक बूढ़ी औरत की सेवा में कितने लोग तत्पर हैं और गुरप्यारी माता से उन्हें ईर्ष्या होने लगती। डॉक्टर आते तो उन्हें डांटकर बाहर निकाल देते। डॉक्टरों के जाने के बाद वे फिर मां की चारपाई को घेर लेते। आस-पास मंडराते रहते बछड़े और बछियों की तरह।

कुमार मां की वे आंखें ही नहीं भूल पाता है। उन अलविदाई आंखों में संसार भर का प्यार सिमट आया था। मरती हुई मां की अपने बच्चों को निहारती आंखें। जैसे समस्त जगत की प्राण-चेतना उन आंखों में समा गई हो।

तीस बरस पहले पिता की मृत्यु के समय वह तेरह बरस का था और अब मां की मृत्यु के समय तिरतालीस का हो गया है। लेकिन उसे लगा कि वह तेरह वर्ष का ही बालक है। वैसा ही 'अबोध', वैसा ही 'भावुक'। हां उसके कवि मित्र केवल गोस्वामी ने भी यही कहा था मां के मरने के बाद! उसे उस समय बुरा लगा था। ये विशेषण उसे रास नहीं आए थे। लेकिन केवल गोस्वामी ने सच ही तो कहा था कि "कुमार तुम···।" वह उतना ही अबोध है, भावुक है जितना कि वह तीस वर्ष पहले था। तीस वर्ष पहले की मां की आकृति उसकी आंखों के सामने तैर-तैर जाती है। पैंतीष वर्षीय युवती के रूप में चलती हुई मां की आकृति। बैठी हुई मां! सोचती हुई मां! उससे लड़ती हुई मां! रूठकर बिन खाए सोने का बहाना करती हुई मां। गोबर से घर का आंगन लीपती हुई! कभी गाय और कभी भैंस का दूध निकालती! धोती पहनती हुई! करेले और दाल के साथ स्वाद लेकर कौर खाती हुई! अपने बच्चों के लिए मरखनी गाय की तरह इस-उस से जा भिड़ती हुई, क्रुध हो जाने पर उन्मत्त हथिनी की तरह चिंघाड़ती हुई, और एक बार जब वह घर से भाग कर सहारनपुर चला गया था, उसकी इन्तजार करती हुई और जब वह वहां से एक परिचित आदमी के साथ लौटा तो उस आदमी को दुआएं देती हुई। उसे छाती से लगाकर सूजी हुई

आंखों से रोती हुई मां···

अतीत जैसे लौट आया है। कितनी भी कोशिश करने के बादजूद वर्तमान और भविष्य के दृश्य जैसे धुंधले हो गए हैं। उसकी अश्रुमती आंखों को जैसे सब कुछ धुंधला-धुंधला नजर आने लगा है सिवाए उस अतीत के जब वह तेरह बरस का था और उसने पहली बार मां को युवती के रूप में देखा था और शायद मां के साथ सोने में उसे पहली बार शर्म-सी लगी थी। तब शायद पहली बार उसके जीवन में सौन्दर्य का बोध जगा था और तब शायद पहली बार उसने मां को एक सुन्दर युवती के रूप में देखा था। और शायद पहली बार उसके मन में यह सोचकर एक गहरी हूक-सी उठी थी कि मां असमय में ही विधवा हो गई है। तब मां की देह-यष्टि की ओर उसने बड़ी चाहत से निहारा था और उसकी दोनों आंखें भर आई थी।

तब से लेकर अब तक का जीवन मां ने तपस्विनी की तरह गुजारा था। उस ढलती हुई, रोगग्रस्त होती हुई और फिर जर्जर तथा नष्ट होती हुई सौंदर्य-प्रतिमा को तीस वर्ष तक धड़कते हुए उसने देखा था। लेकिन ये तीस वर्ष सपने की तरह गुजर गए थे। जैसे उसके जीवन में यथार्थ बनकर कभी आए ही नहीं और शायद इसीलिए उसकी उमर में तीस वर्ष जैसे कम हो गए थे।

वह तेरह वर्ष के बालक की ही तरह सुबक-सुबक कर रो रहा था। तेरह वर्ष का एक बालक जैसे अनाथ हो गया था; उसके माता-पिता एक साथ देखते-ही-देखते जीवन-पथ पर इतिहास के पहिए के नीचे आकर हमेशा-हमेशा के लिए उसे अकेला छोड़ गए थे, एक हादसे की तरह, जो तीस साल पहले शुरू हुआ था और अब मां के साथ खत्म हो गया था।

भेड़िया

वे माल रोड के पास चैमरियों में रहते थे। मेरा उनसे पहला परिचय गिरीशदत्त पांडे नाम के एक सज्जन ने कराया था जो रेलवे में एकाउंटेंट थे। जब मैं पहली बार उनके घर गया था तो पांडे ने मिश्र जी से मेरा परिचय कराते हुए कहा—"यह लड़का बहुत मेधावी है। हिंदी और बंगला के उपन्यास पढ़ता है। प्रेमचंद, जैनेन्द्र, यशपाल, शरत, बंकिम, रवीन्द्र सभी को इसने धोक रखा है। आपके खूब काम आएगा।"

कुसुम के पिता का नाम श्री राधावल्लभ मिश्र था। वे नौकरी से रिटायर होने वाले थे और चन्द महीने हुए उनकी धर्मपत्नी यानी कुसुम की मां का देहांत हो चुका था। श्री मिश्र ने [illegible] को आवाज देते हुए पुकार कर कहा—

"कुसुम, देख कौन आया है !!"

कुसुम ने बाहर आकर मेरी ओर ताका था। सलोने रंग की छरहरी काया लिए वह सूजी आंखों से मुझे देख रही थी। मैं भांप गया था कि वह रोकर आई है। मैंमे मिश्र जी पूछा था—"इनकी तबियत कुछ ठीक नहीं लगती !"

मिश्र जी ने बताया था कि मां इसे बहुत याद आती है। मां को याद-कर रो पड़ी होगी।

यह कुसुम से मेरा पहला परिचय था।

उसके बाद उन लोगों के यहां अक्सर जाना होता। मिश्र जी अपनी जवानी के दिनों में संगीतकार रहे थे। संस्कृत के पुराने पंडित थे। कभी हारमोनियम पर फिराक और फैज के गजल सुनाते तो कभी सूर और मीरा के गीत। बाद में निराला के गीत भी हारमोनियम पर उतार-उतार कर सुनाते और विभोर हो उठते।

कुसुम इस बीच आती और आगरे का पेठ्ठा, तथा बीकानेरी भुजिया के साथ चाय दे जाती। कभी-कभी वह भी हमारे साथ बैठ जाती; साहित्यिक तथा गैरसाहित्यिक बहसों में हिस्सा लेती। कभी-कभी ऐसा भी होता कि मिश्र जी घर पर न होते और वह घर पर होती। तब मैं चाय-वाय नहीं पीता था, न ही वह पिलाने के लिए आग्रह करती थी और मैं लौट आता था।

एक बार मिश्र जी ने जो मुझसे आयु में पैंतीस या चालीस वर्ष बड़े थे, और मुझे लगभग मित्र मानने लगे थे, अपनी बेटी कुसुम को मेरे सामने डांट दिया। शायद उन्हें यह गलतफहमी हो गई थी कि कुसुम मेरी और अपने पिता की प्रगाढ़ होती हुई मैत्री को पसंद नहीं करती। कुसुम ने इस डांट का यह अर्थ लगाया था कि शायद उन्हें मैंने भड़काया है। फलस्वरूप महीनों तक वह मुझसे नाराज रही थी और जब मैं मिश्र जी के साथ बैठा उनसे हारमोनियम या तबला सुन रहा होता, वह हमारे सामने नहीं आती थी। आगरा का पेठ्ठा और बीकानेरी भुजिया भी अब चाय के साथ नहीं मिल पाती थी।

मेरी उमर उन दिनों लगभग सत्तरह-अठारह वर्ष के आसपास रही होगी। कुसुम की आयु भी मुझसे एक-दो वर्ष अधिक या कम रही होगी।

समय के साथ मैं सरकारी नौकरी में भर्ती हो गया और दफ्तर जाने लगा। कुसुम का भी विवाह हो गया। इधर मेरा भी। जिंदगी व्यस्त से व्यस्ततर होती गई। अब मिश्र जी के यहां आना-जाना भी कम होता गया। जाने पर कुसुम से साक्षात्कार का भी सवाल न रहा क्योंकि वह अब विवाहित थी और अलग पति के साथ रहती थी।

कुछ दिनों बाद सुनने में आया कि कुसुम बीमार रहती है।

एक बार मैं उसके पति के यहां उससे मिलने गया। हालात जानकर दिल दहल गया।

पति उसकी बीमारी से बहुत जल्द तंग आ गए थे और दूसरी शादी के सपने देखने लगे थे। उनका कहना था कि उसकी बीमारी बहुत पुरानी है और ठीक होने वाली नहीं है।

दो वर्षों बाद यकायक खबर मिली कि वह हस्पताल में है। वहां मिलने गया तो बाबूजी ने (मिश्र जी को हम बाबूजी ही कहते थे) उसी पुराने आत्मीय अन्दाज में कहा'—कुसुम देख तो कौन आया है?

कुसुम बिस्तर पर दीवार की ओर मुंह किए लेटी थी। उसकी पीठ हमारी ओर थी। बिना देखे ही वह समझ गई थी कि कौन आया है। उस का रुग्ण शरीर देखकर डर लगता था। उसने एक बार करवट लेकर मुझे देखा और फिर मुंह फेरकर लेटी रही। अश्रुओं से उसका चेहरा बुरी तरह भीग चुका था और उसके छिपाने के बावजूद यह मुझसे छिपा नहीं रहा था।

उस दिन मैं बाबूजी से भी कोई बात नहीं कर सका।

कुसुम से वह मेरी आखिरी मुलाकात थी। उसके बाद वह जीवित नहीं रही।

एक पति अपनी पत्नी को किस तरह लील सकता है, कुसुम का अन्त, इस सत्य का साक्षी था।

कुसुम की मृत्यु के बाद मैं बाबूजी से मिला तो मैंने पूछा था—बाबूजी कुसुम ने मरते समय कोई इच्छा जाहिर की थी? कुछ कहा था??

मर्मांतक पीड़ा के साथ मुस्करा कर बाबूजी बोले—हां कुसुम ने यह कहा था—

भेड़िये ने आंखों में आंसू भरकर दम तोड़ती हुई भेड़ से कहा था—"जाते-जाते अपनी चचेरी बहन बकरी से मेरा पटरा-फेर करा दो!"

यह बात कुसुम ने पिता से अंतिम बार गले लगकर कही थी। कहते

हुए वह सुबक रही थी। उसने पिता से यह भी कहा था कि जीते-जी वह उनका यह काम नहीं करा सकी। वह चाहती है कि उसके मरने के बाद पिता उसके पति का पुनर्विवाह संपन्न करा दें।

आज जब-जब मुझे कुसुम की याद आती है तो उसके लिए जितना स्नेह उमड़ता है उतना ही गुस्सा भी।

—: o :—



नाम : राजकुमार सैनी

जन्म : 7 सितम्बर, 1942.

पिता : स्वर्गीय श्री भजनलाल सैनी।

शिक्षा : एम. ए. एल. एल. बी, साहित्यरत्न।

पेशा : हिंदी अधिकारी, पर्यटन विभाग।

निवासी : तिमारपुर, दिल्ली।

प्रकाशित कृतियाँ :

1. साहित्य स्रष्टा निराला (आलोचना)
2. यथार्थवाद और सौन्दर्य शास्त्र (आलोचना)
3. आशुतोष और प्रभा (उपन्यास)
4. 'प्रहार स्याह रात पर' (चंचल चौहान के साथ संयुक्त कविता-संग्रह)
5. नरम-नरम धूप' } कविता-संग्रह
6. घाटी से शिखर तक }

संक्षिप्त परिचय : पिछले डेढ़ दशक से सक्रिय लेखन। आलोचक, कवि और उपन्यासकार के रूप में चर्चित। लगभग तीन सौ से अधिक लेख, कविताएँ, समीक्षाएँ विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।